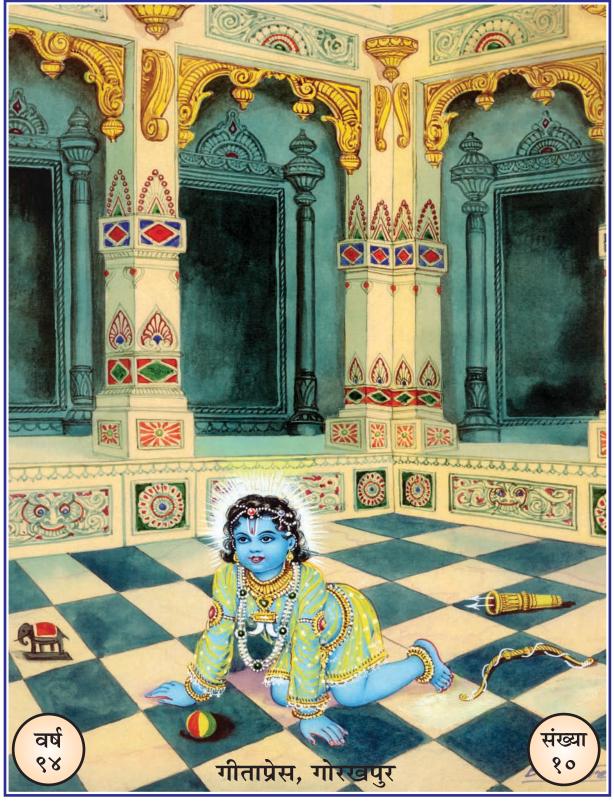
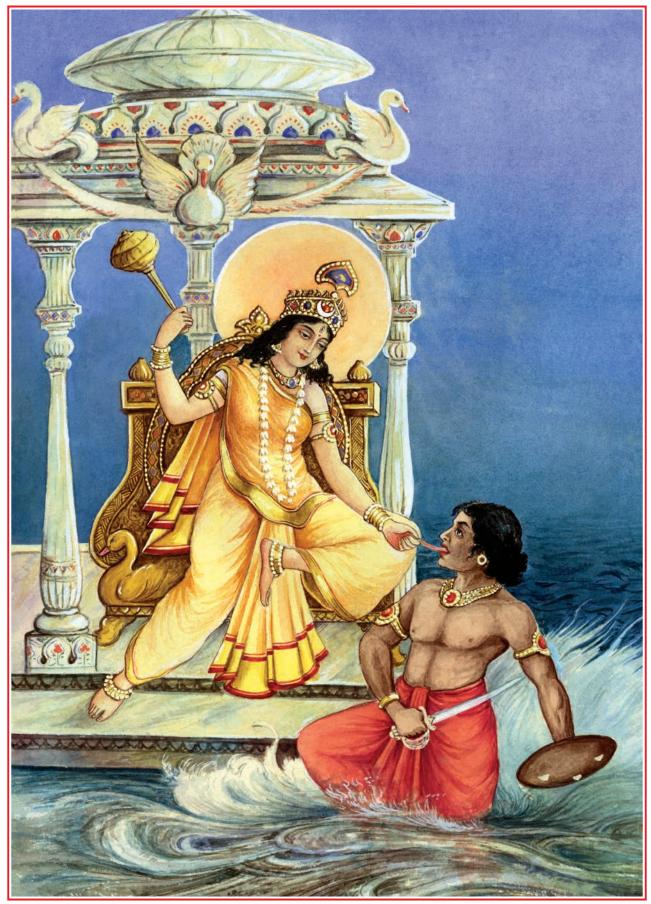
an calul



श्रीरामकी बालछवि





भगवती बगलामुखी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा। दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, अक्टूबर २०२० ई० पूर्ण संख्या ११२७

भगवती बगलामुखीका ध्यान

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् । पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्॥ जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।

गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि॥ 'सुधासमुद्रके मध्यभागमें एक मणिमय मण्डप है। उस मण्डपमें रत्नमयी वेदी है। उस वेदीपर स्वर्णमय सिंहासन सुशोभित है। उस सिंहासनपर देवी बगलामुखी विराजमान हैं। उनकी अङ्गकान्ति पीले रंगकी है। उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग रेशमी पीताम्बर, पीले रंगके आभूषण तथा पीत पृष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत

है। देवीके एक हाथमें मुद्गर और दूसरेमें शत्रुकी जिह्वा है। ऐसी भक्तवत्सला देवीका मैं भजन करता हूँ। देवी अपने बायें हाथसे शत्रुओंकी जिह्वाका अग्रभाग पकड़कर दाहिने हाथकी गदाके प्रहारसे उन्हें पीड़ित कर रही हैं। ऐसी पीताम्बरधारिणी तथा दो भुजाओंसे सुशोभित बगलामुखी देवीको मैं नमस्कार करता हूँ।'

ंसुध इन्ने स्वर्णमय हि रंगकी है। इन्ने है। देवीके इन्ने देवी अपने इन्ने कर रही है

	रे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ । २,००,०००)
कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, अक्टूबर २०२० ई० विषय-सूची	
१- भगवती बगलामुखीका ध्यान	१४- गुजरातके सन्त श्रीडायाराम बाबा [सन्त-चरित] (श्रीरितभाईजी पुरोहित)
१३- धर्मरथ (श्रीभगवतदास राघवदासजी महाराज)३१	सच्ची निष्ठा५०
चित्र १- श्रीरामकी बालर्छवि(रंगीन) आवरण-पृष्ठ २- भगवती बगलामुखी(") मुख-पृष्ठ ३- श्रीरामकी बालर्छवि६	•
————————————————————————————————————	
एकवर्षीय शुल्क ₹२५० विदेशमें Air Mail विर्विक U	य । सत्-।चत्-आनद् भूमा जय जय ॥ य । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥ तते । गौरीपति जय रमापते ॥ US\$ 50 (₹ 3,000)
आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन सम्पादक — राधेश्याम खेमका, स	अद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित
	ran@gitapress.org
सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्या Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalya	लय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें। ın या Kalyan Subscription option पर click करें। 'g अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

संख्या १०] कल्याण याद रखो-मनुष्यकी सच्ची प्रतिष्ठा तो उसके याद रखों—दम्भी पुरुष चाहे यह मान ले कि जीवनमें सर्वत्र प्रकाशित दैवी गुणोंमें है—दैवी जीवनमें में बडा चतुर हूँ, लोगोंको बडी आसानीसे ठग सकता है। धन और पदसे जीवनकी महत्ताका जरा भी हूँ, पर वस्तुत: वह स्वयं ठगाता है—अपनी सच्ची सम्बन्ध नहीं है। धन तो अत्याचारी डकैतोंके पास सम्पत्ति—दैवी सम्पत्तिको खोकर वह अपना बहुत बडा भी हो सकता है। दृष्ट राक्षस भी समस्त दैवी नुकसान करता है। जगतुको संत्रस्त करनेवाली अपनी राक्षसी शक्तिके याद रखों—दैवी सम्पत्तिके लक्षण या दैवी गुण द्वारा कुछ समयके लिये विश्व-सम्राट्के पदपर आरूढ़ प्रधानतया ये छब्बीस हैं-निर्भयता, अन्त:करणकी हो सकते हैं। पवित्रता, ज्ञानयोगमें स्थिति, दान, इन्द्रियदमन, यज्ञ, याद रखो-जिन्होंने अपने ब्रे आचरणों तथा स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, दुष्ट व्यवहारोंसे मानवतापर कलंक लगा दिया है, जो शान्ति, निन्दा-चुगली न करना, प्राणियोंपर दया, अपने निषिद्ध कर्मों के द्वारा जगतुके सामने नीच तथा लालचका अभाव, मृद्ता, बुरे कर्मोंमें लज्जा, चपलताका पतित आदर्शकी प्रतिष्ठा कर रहे हैं, वे कुछ समयके अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर-भीतरकी शुद्धि, अद्रोह लिये इन्द्रियोंके गुलाम, चाटुकार, भ्रान्त और भोग-और मानका अभाव। परायण जनसमृहपर धन और अधिकारकी धाक सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थिति:। अभयं दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥

जमाकर उसके द्वारा भले ही मिथ्या अभिनन्दन तथा प्रतिष्ठा प्राप्त कर लें; परंतु उनको अपने दुष्कर्मींका भीषण परिणाम अवश्य भोगना पडेगा। याद रखो-मनुष्य पतित-समाजमें अपने पतित कर्मोंकी प्रमुखतासे प्रशंसा-प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है, वैसे ही जैसे चोर-डकैतोंके दलमें सफल चोर-डकैत आदर-सम्मान प्राप्त करता है; परंतु इस आदर-सम्मान और प्रशंसा-प्रतिष्ठासे उसका और भी पतन होता है और कर्मफलनियन्ता सर्वशक्तिमान् परमात्माकी दृष्टि, न्याय और दण्डसे वह कभी

नहीं बच सकता। याद रखो-मनुष्य ऊपरसे भला बनकर, भले-मानुषका वेश धारणकर भोली जनताको ठगनेके लिये

दम्भ कर सकता है और उसमें सफल भी हो सकता

है; परंतु सर्वान्तर्यामी परमात्माके सामने उसका दम्भ

नहीं चल सकता—उसकी पोल खुल जाती है और उसे

अपने कर्मका भयानक फल भोगना ही पडता है।

बन्धनसे मुक्त होकर भगवानुको प्राप्त हो जायँगे, उनका मनुष्य-जन्म सफल हो जायगा। इसके विपरीत, जिनमें उपर्युक्त आसुरी और राक्षसी भाव होंगे, उनका यहाँ तो पतन होगा ही, वे कर्मबन्धनमें और भी

याद रखो-मनुष्यका मनुष्यत्व इसीमें है कि

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुप्वं मार्दवं हीरचापलम्॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।

भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

याद रखो - जिनमें ये दैवी गुण हैं, वे संसारके

वह स्वयं भगवानुको भजे और दुसरोंको भजनमें लगाये। जो इससे विपरीत केवल विषय-भोगमें लगा है, वह पशु है और जो विषय-भोगोंकी प्राप्तिके लिये हिंसा, असत्य, अन्याय, दम्भ और निषिद्ध कर्मोंका आश्रय लेता है, वह तो पिशाच या राक्षस है। 'शिव'

जकडे जायँगे।

भगवान् श्रीरामकी बालछवि



विषयमें वेदवाणी कहती है—'न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिप:।' अर्थात् 'उसे कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं और उसका कोई स्वामी भी नहीं।'

करती हैं, जो मन तथा वाणीसे परे है, सम्पूर्ण विश्वका जो

मूल कारण है, जो सर्वेश्वर और सर्वाधार है, जिसके

वहीं निर्गुण, निराकार, अनादि, अनन्त, अव्यक्त, सर्वशक्तिमान् परम ब्रह्म प्रेमके वशमें होकर नन्हा-सा बालक बन जाता है। अपनेको समर्पित कर देता है वह

निखिलब्रह्माण्डनायक। महाराज दशरथने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और अग्निदेवने

उन्हें प्रकट होकर चरु (पायस) दिया, यह सब तो एक निमित्त

है। यह भी लीलामयकी वैसी ही लीला है, जैसे दूसरे नर-नाट्य उन्होंने किये। महाराज दशरथ तो साकेतके नित्य पिता

हैं और माता कौसल्या नित्य माता हैं। परात्पर परमब्रह्म साकेत– विहारी श्रीराम सदा-सर्वदा श्रीदशरथनन्दन एवं कौसल्या-

नन्दवर्धन ही हैं। अत: पृथ्वीपर उनके प्रकट होनेके जितने कारण कहे जाते हैं—सब लीलामात्र हैं। यहाँ उनकी

बालक्रीड़ाकी एक मनोरम झाँकी प्रस्तुत की जा रही है—

मणिमय आँगनमें घुटनोंके बल सरक लेते हैं। उनके

कर-चरणोंमें मणिमय आभूषण आ गये हैं। 'बालक रूप राम कर ध्याना।' श्रीकाकभुशुण्डिजीके आराध्यदेव शंकर-मानस-मराल, इनकी शोभा अवर्णनीय है। ध्यान

करनेयोग्य है यह बालछवि-काम कोटि छिब स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥ अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जन् मोती॥

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे । नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥ कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥ भुज बिसाल भूषन जुत भूरी । हियँ हरि नख अति सोभा रूरी।।

उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा। कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छिब छाई।।

दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥ सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥ चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥

पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई।। और सच्ची बात तो यह है कि-

रूप सकिंह निहं किह श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहि देखा॥ एक बार इन नेत्रोंसे न सही, स्वप्नमें भी जिन्होंने उस अपरूप रूपको देखा है, धन्य है उनका जीवन।

उन्होंने ही संसारमें जन्म लेनेका फल पाया है। कवितावलीमें गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं-पग नूपुर औ पहुँची करकंजिन मंजु बनी मनिमाल हिएँ।

नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृपु गोद लिएँ॥ अरबिंदु सो आनन रूप मरंदु अनंदित लोचन भूंग पिएँ। मनमो न बस्चो अस बालकु जौं तुलसी जगमें फल कौन जिएँ॥

इन शोभासिन्धुके बोलनेकी, हठ करनेकी, खीझनेकी एक शोभा है-अपूर्व शोभा। अरुण अधरोंसे निकली तोतली वाणी—

बर दंतकी पंगति कुंदकली अधराधर-पल्लव खोलनकी। चपला चमकें घन बीच जगें छिब मोतिन माल अमोलनकी।। घुँघरारि लटैं लटकें मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलनकी।

Hinखीराइनक्तां इंडेन के इसरे कें hates: के जबहा सुनुके ha के कि एक कि का की मार्टिक के का कि का कि का कि का कि

भगवानुकी प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण संख्या १०] भगवान्की प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) उत्तम गुण और उत्तम आचरण शीघ्र परमात्माकी करना। प्राप्ति करानेवाले हैं। उत्तम गुणोंसे अभिप्राय है—हृदयके मन, वाणी, शरीरसे किसी क्षुद्र-से-क्षुद्र भी प्राणीको उत्तम भाव और उत्तम आचरणोंसे अभिप्राय है-मन, किसी भी निमित्तसे किंचिन्मात्र भी कभी दु:ख न वाणी और शरीरकी उत्तम क्रिया। इनमें उत्तम क्रियाओंसे पहुँचाना, बल्कि अभिमानका त्याग करके नि:स्वार्थभावसे उत्तम भावोंका संगठन होता है और उत्तम भाव होनेसे सबका सब प्रकारसे परम हित ही करते रहना। कोई उत्तम क्रियाएँ स्वाभाविक ही होती हैं। ये परस्पर एक-अपना अनिष्ट भी करे तो भी उसका हित ही करना। दूसरेके सहायक हैं। फिर भी क्रियाकी अपेक्षा भाव वाणीके द्वारा भगवान्के नामका प्रेम और आदरपूर्वक प्रधान है। जैसे कोई मनुष्य दूसरोंके अनिष्टके लिये यज्ञ, निरन्तर जप करना तथा सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय करना दान, तप आदि करता है, तो उसकी वह क्रिया तामसी एवं जो सत्य और प्रिय हो तथा जिसमें सबका हित हो, है और वही क्रिया यदि पुत्र, स्त्री, धन और स्वर्ग ऐसा कपटरहित सरल वचन बोलना। आदिके लिये की जाती है, तो राजसी है तथा सदा शास्त्रकी मर्यादाका पालन करना। भारी-से-निष्कामभावसे संसारके हितके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ करनेपर भारी कष्ट पड़नेपर भी लज्जा, भय, लोभ, काम अथवा वही क्रिया सात्त्विकी हो जाती है। क्रिया एक होते हुए किसी भी कारणसे मर्यादाका त्याग नहीं करना। भी भाव उत्तम होनेसे वह उत्तम फलदायक बन जाती महापुरुषोंका संग, सेवा-सत्कार, नमस्कार और है। इसलिये क्रियाकी अपेक्षा भाव ही प्रधान है। उनकी आज्ञाका पालन करना इत्यादि। इस प्रकारके उत्तम आचरणोंको नि:स्वार्थभावसे जो दुराचार, दुर्व्यसन और व्यर्थकी क्रियाएँ हैं, वे सब तो नरकमें ले जानेवाली हैं, उनकी तो यहाँ कोई करनेपर अन्त:करणकी शुद्धि होकर भगवान्की प्राप्ति चर्चा ही नहीं है। वे तो सर्वथा त्याज्य हैं। जो हो जाती है। कल्याणकारक आचरण हैं, जो भगवत्प्राप्तिमें सहायक इसके सिवा, जिनके कान भगवान्के नाम, रूप, हैं, उन्हींकी यहाँ चर्चा की जाती है। वे सब आचरण गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व, रहस्यकी बातोंको सुनते-सुनते भी निष्कामभावसे किये जानेपर ही कल्याण करनेवाले अघाते नहीं, जिनके नेत्र केवल भगवान्के दर्शनोंके लिये होते हैं। इसलिये शास्त्रोक्त उत्तम क्रियाओंका आचरण ही चातक और चकोरकी भाँति लालायित रहते हैं, जिनकी वाणी प्रेमपूर्वक भगवान्के गुणोंका ही गान निष्कामभावसे ही करना चाहिये। उत्तम क्रियाएँ करती रहती है, जिनकी नासिका भगवान्के स्वरूप तथा कौन-कौन-सी हैं, उनका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है— भगवानुको अर्पण किये हुए पुष्प, चन्दन, माला, तुलसी नैवेद्य आदिकी गन्धको लेकर मग्न होती रहती है, सबके साथ सरलता, विनय, प्रेम और आदरपूर्वक जिनकी जिह्वा भगवान्के अर्पण किये हुए प्रसादका ही नि:स्वार्थभावसे व्यवहार करना। आस्वादन करती है तथा जो नर-नारी भगवान्को अर्पण शरीरको जल और मृत्तिकासे शुद्ध और स्वच्छ रखना तथा घर और वस्त्रोंको भी शुद्ध और स्वच्छ करके ही और भगवान्की प्रसन्तताके लिये ही भगवान्का प्रसाद समझकर वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं, जो रखना। मनुष्य अपने शरीरसे ईश्वर, देवता और ब्राह्मणोंका तथा ब्रह्मचर्यका पालन करना। किसी भी सुन्दरी युवती स्त्रीका अथवा पुरुष या बालकका अश्लीलभावसे दर्शन, वर्ण, आश्रम, गुण, पद, और अवस्थामें जो अपनेसे बड़े भाषण, स्पर्श, चिन्तन, एकान्तवास आदि कभी न हों, उनका प्रेम और विनयपूर्वक आदर-सत्कार, सेवा,

आज्ञापालन और नमस्कार करते हैं, जो एकमात्र कृपा समझते हैं और अपनेमें जो ब्राई है, उसे अपने भगवान्पर ही निर्भर रहकर हाथोंके द्वारा भगवान्की स्वभावका दोष मानते हैं, भगवानुके भक्तोंमें जिनका प्रेम सेवा, पूजा श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे करके मुग्ध है, जो जाति, पाँति, धन, घर, परिवार, धर्म, बडाई आदि होते हैं, जो भगवानुके लीलाविग्रहों और उनके भक्तोंके सबमें आसक्तिका त्यागकर भगवानुको ही हृदयमें धारण दर्शनार्थ ही चरणोंसे तीर्थोंमें जाते और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक किये रहते हैं, जिनकी दृष्टिमें स्वर्ग, नरक और मोक्ष समान हैं, जो सर्वत्र भगवान्को ही देखते रहते हैं, जो उनमें स्नान करते हैं, जो भगवान्के मन्त्रका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जप करते हैं, जो शास्त्र-विधिके अनुसार मन, वाणी और शरीरसे भगवानुके ही सच्चे सेवक हैं नित्य दान, श्राद्ध, तर्पण, होम, ब्राह्मण-भोजन श्रद्धा-और जो कभी कुछ भी नहीं चाहते, प्रत्युत जिनका प्रेमपूर्वक करते हैं,जो माता, पिता, स्वामी, आचार्य आदि एकमात्र भगवानुमें ही स्वाभाविक निष्काम प्रेम है, ऐसे मनुष्योंके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं। गुरुजनोंको भगवान्से भी बढ़कर समझते तथा उनकी सब प्रकारसे श्रद्धा, भक्ति और आदरपूर्वक सेवा, सत्कार यों तो भगवान् सब जगह समान-भावसे व्यापक और पूजा करते हैं-इस प्रकार जो केवल भगवान्में प्रेम हैं ही, किंतु जिनके हृदयका भाव उपर्युक्त प्रकारसे होनेके लिये ही श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भक्तिसंयुक्त उपर्युक्त उत्तमोत्तम सद्गुण और भगवत्प्रेमसे युक्त है, उनके आचरण करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे विराजमान हैं। गीता निवास करते हैं। (९।२९)-में भगवान् कहते हैं-जिनके हृदयमें सम्पूर्ण दुर्गुणोंका अभाव होकर समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। सद्गुण प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उनके हृदयमें भगवान् ये भजन्ति तु मां भक्त्या मिय ते तेषु चाप्यहम्॥ विशेषरूपसे निवास करते हैं और वे शीघ्र ही परमात्माक 'मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा निकट पहुँच जाते हैं। अप्रिय है और न कोई प्रिय है; परंतु जो भक्त मुझको जिनमें काम-क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार-अभिमान, प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष मद-मत्सर, दम्भ-दर्प, राग-द्वेष, छल-कपट, अशान्ति-प्रकट हुँ।' क्षोभ, आलस्य-प्रमाद, भोगवासना और विक्षेप आदिका यद्यपि ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणियोंमें अत्यन्त अभाव हो गया है, जो सबके हेतुरहित प्रेमी, भगवान् अन्तर्यामीरूपसे समभावसे व्याप्त हैं, इसलिये सबके हितमें रत, सुख-दु:ख, निन्दा-स्तुति, मान-उनका सबमें समभाव है और समस्त चराचर प्राणी उनमें अपमान, जय-पराजय, लाभ-अलाभमें सम हैं, जिनके सदा स्थित हैं, तथापि भगवान्का अपने भक्तोंको अपने मनमें भगवान्के सिवा अन्य कोई आश्रय नहीं है, जो हृदयमें विशेषरूपसे धारण करना और उनके हृदयमें निरन्तर भगवान्के ही शरण हैं, जिन्हें भगवान् प्राणोंसे स्वयं प्रत्यक्षरूपसे निवास करना भक्तोंकी अनन्य भक्तिके भी बढ़कर प्यारे हैं, जिनका भगवान्में ही अनन्य विशुद्ध कारण ही होता है। प्रेम है, जो माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र, स्वामी, गुरु, जैसे समभावसे सब जगह प्रकाश देनेवाला सूर्य दर्पण आदि—स्वच्छ पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होता है, धन, विद्या, प्राण—सर्वस्व एक भगवान्को ही मानते हैं, जो परनारीको माताके समान और पराये धनको विषके काष्ठादिमें नहीं होता, तथापि उसमें विषमता नहीं है; समान समझते हैं, जो दूसरोंके दु:खसे दुखी और दूसरोंके वैसे ही भक्तोंके हृदयमें विशेषरूपसे विराजमान होनेपर

भी भगवान्में विषमता नहीं है।

जिनका किसीसे भी द्वेष नहीं, सबपर हेतुरहित दया

और प्रेम है, जो क्षमाशील हैं, अहंकार और ममताका

जिनमें अत्यन्त अभाव है, जिन्होंने अपने मन, बुद्धि और

सुखसे ही सुखी रहते हैं, जो दूसरोंके अवगुणोंको नहीं

देखते, उनके गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, जो गौ, ब्राह्मण और समस्त प्राणियोंके हितमें रत हैं, जो नीतिमें निपुण

हैं, जो अपनेमें जो कुछ अच्छाई, है, उसे भगवानुकी

संख्या १०] धन औ	र सुख ९
**************************************	********************************
इन्द्रियाँ वशमें करके भगवान्में ही लगा दिये हैं, जिनसे	इसलिये हमें चाहिये कि अपने भाव और क्रियाओंको
किसीको भी उद्वेग नहीं होता, जिनका हृदय इच्छा, भय,	उत्तम-से-उत्तम बनायें। वास्तवमें भाव उत्तम होनेसे
उद्वेग और आसक्तिका अत्यन्त अभाव होकर परम शुद्ध	क्रिया अपने-आप स्वाभाविक ही उत्तम होने लगती है,
हो गया है, जो पक्षपातरहित और दक्ष हैं, जो संसारसे	उसमें कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता और जो सर्वथा
उदासीन और विरक्त हैं, जिनमें कर्मींके कर्तापन और	ईश्वरके ही शरण हो जाता है, अपने-आपको ईश्वरके
फलेच्छाका अत्यन्त अभाव है, हर्ष-शोकका भी जिनमें	समर्पण कर देता है, उसमें ईश्वरकी भक्तिके प्रभावसे
अत्यन्त अभाव है, जिनका वैरी-मित्रमें, शीत-उष्णमें,	उत्तम गुण स्वतः ही आ जाते हैं। अतः हम लोगोंको
अनुकूलता-प्रतिकूलतामें और मिट्टी-स्वर्णमें समान भाव	उत्तम गुण और उत्तम भावकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारसे
है, इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणी, पदार्थ, भाव, क्रिया और	ईश्वरकी शरण होकर निष्काम प्रेम-भावसे ईश्वरकी
परिस्थितिमें जिनका समान भाव रहता है, जो भगवान्के	अनन्य भक्ति करनी चाहिये। इस प्रकार करनेपर ईश्वरकी
विधानमें हर समय सन्तुष्ट है, घर और देहमें अभिमानसे	कृपासे प्रमाद, आलस्य, भोगवासना, दुर्गुण, दुराचार,
रहित हैं, जिनकी बुद्धि स्थिर है और जो परमात्माके	दुर्व्यसन और व्यर्थ संकल्पोंका अत्यन्त अभाव होकर
ज्ञानमें ही नित्य स्थित हैं—ऐसे भक्तिसंयुक्त सद्गुणोंसे	परम कल्याणकारक विवेक और वैराग्ययुक्त सद्गुण-
सम्पन्न भगवान्के भक्त भगवान्को अत्यन्त प्रिय हैं।	सदाचार स्वतः ही आ जाते हैं।
	
धन औ	ार सुख
(प्रो० श्रीरामचरण	महेन्द्रजी, एम०ए०)
'धन और सुख—क्या इन दोनोंमें कोई अन्योन्याश्रित	सकते हैं और अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकते
निकट सम्बन्ध है? जो व्यक्ति हमारे समाजमें अतुल	हैं। धनके माध्यमसे हमें नित्य-प्रतिके दैनिक जीवन और
धनके स्वामी हैं, जिनके पास लक्ष्मीका अनन्त वैभव है,	समाजसे सम्बन्धित चीजें प्राप्त हो सकती हैं। इनके द्वारा
जिनके इंगितपर सैकड़ों नौकर भाग उठते हैं, क्या वे	हम अपने तथा अपने परिवारके भोजन, वस्त्र, निवास,
आन्तरिक रूपमें सुखी, तृप्त और सन्तुष्ट भी हैं? जिन	मनोरंजन आदिके भौतिक सुख प्राप्त कर सकते हैं।
लक्ष्मीपुत्रोंके पास बृहत् पूँजी है; जमीन-जायदाद, धन-	दूसरे शब्दोंमें यों कहें कि धन एक भौतिक साधन
मकान इत्यादि हैं, क्या उन्हें पूर्ण आनन्द, सन्तोष और	या माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपनी भौतिक
शान्ति-जैसे दैवी गुण भी उपलब्ध हैं ? सुसज्जित मकान,	आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हैं और अपने शरीरको
सुन्दर वस्त्र, आभूषण, मोटर, सुस्वादु भोजन एवं धन-	सन्तुष्ट करते हैं। प्रत्येक पैसेमें अनेक छोटी-छोटी
सम्पदाके भण्डारोंके स्वामी क्या इस संसारका सुख	वस्तुएँ सिमिटकर आ बसी हैं।
लूटते हैं?'—ये ऐसे प्रश्न हैं, जो भौतिक सुखके पीछे	परंतु जब धन ही मनुष्यका साध्य बन जाता है और
उन्मत्त जनमानसको आज उद्वेलित कर रहे हैं। समग्र	हम धन-संग्रहको ही जीवनका प्रधान लक्ष्य बना लेते
सभ्य संसार धन-लिप्सापर प्राण दे रहा है।	हैं, तब हम एक ऐसी दुष्प्रवृत्तिमें फँस जाते हैं, जिससे
क्या वास्तवमें धनमें सुख है? इस महत्त्वपूर्ण	हमें लाभ और शान्तिके स्थानपर मोह, तृष्णा, अतृप्ति,
प्रश्नपर विचार करनेसे पूर्व यह जान लेना चाहिये कि	लालच और मानसिक अशान्ति मिलने लगती है। हम
धन वस्तुत: क्या है ?	धनको बढ़ाने, दूसरोंपर दमनचक्र चलाने, झूठी शान
धन एक ऐसा भौतिक साधन है, जिसके माध्यमसे	स्थिर रखने, संचित पूँजीको सहेजनेके मायाजालमें लग
हम समाजमें भिन्न-भिन्न आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कर	जाते हैं। मनकी शान्ति भंग हो जाती है और अतृप्ति

भाग ९४ ******************* मनके सन्तुलनको नष्ट कर देती है। हमारे आन्तरिक एवं भयंकर रूप धारण किया। एक रात एकाएक हृदयकी आध्यात्मिक विकासकी इतिश्री हो जाती है। गति रुकनेसे उनकी मृत्यु हो गयी! समाचार-पत्रमें लिखा गया था कि ५७ वर्षकी अधिक धन-संग्रहसे लालच, मिथ्या अभिमान, अपहरणकी चिन्ता, दूसरोंसे प्रतियोगिता तथा धन हाथसे वृद्धावस्थाके कारण सेठजीकी मृत्यु हो गयी थी, पर ५७ निकल जानेपर अकाल मृत्युतक होती देखी गयी है। वर्षकी आयु क्या, आज भी फक्कड मस्त फ़कीर गरीब कारण, धन और चिन्ताका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। ९०-९५ तक स्वस्थ जीवित रहते हुए मिलते हैं। किसे प्रथम तो धन अर्जित करनेकी चिन्ता, फिर उसे बढानेकी ज्ञात था कि सेठजीकी मृत्युका कारण वृद्धावस्था नहीं, फिक्र, चोरीसे बचानेकी तरकीबें, आनेवाले खतरोंसे धनके जानेका दु:ख, पुन: वही प्रतिष्ठित पद प्राप्त बचनेके प्रयत्न, मृत्युकालमें प्राण निकलनेमें भयंकर करनेकी चिन्ता, जनतामें फैलनेवाली अपकीर्ति और कष्ट, उत्तराधिकारीके सुपात्र अथवा कुपात्र निकलनेकी पत्नीकी अतृप्ति, सन्तानका बोझ आदि थे। धन अपने द्विधा—प्रारम्भसे अन्ततक धनमें चिन्ता और कष्टका साथ जो जिम्मेदारी और असंख्य चिन्ताओंका भार लाता है, उस दुष्टने उन्हें धराशायी कर दिया। यदि धनमें ही निवास है। जैसे-जैसे धन एकत्रित होना आरम्भ होता है, वैसे-वैसे ही अनेक प्रकारकी कृत्सित चिन्ताएँ, शान्ति होती, तो क्यों सेठजी अशान्त रहते? मानसिक भार, अतुप्ति, लालसा, प्रमाद, दुसरोंका शोषण करनेकी राक्षसी वृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पंजाबके एक अन्य पूँजीपतिका वृत्तान्त मेरे मानसमें उदित हो आया है। ये महानुभाव गल्लेके बड़े व्यापारी हैं। लक्ष्मीकी कृपा हुई तो एक सामान्य स्थितिसे निरन्तर एक वैभवशाली सेठ, जिनकी पिछले दिनों हृदयकी गतिके रुकनेसे आकस्मिक मृत्यु हुई है, नगरभरमें अपने उन्नत होते गये। स्वयं अध्यवसाय और परिश्रमसे कार्य धन और ऐश्वर्यके लिये प्रसिद्ध रहे, आज भी लोग उनका किया तथा शहरके एक प्रतिष्ठित धन-सम्पन्न व्यक्ति नाम स्मरण कर लेते हैं। धनके साथ उनमें विलासिताने गिने जाने लगे। ढलती अवस्थामें कारोबार उनके पुत्रोंके पदार्पण किया; वासनाएँ उद्दीप्त हो उठीं, कामभावनाने हाथमें आया, तो विलास, शैथिल्य और मुफ्तमें माल बेचैन किया, तो संयमके स्थानपर वृद्धावस्थामें पुन: विवाह कमानेके धन्धे सोचे जाने लगे। लडके सट्टेमें पड गये। कर लिया। धनका लालच पाकर एक व्यक्तिने अपनी एक-दो बार भाग्यने साथ भी दिया, पर एक उदास कन्याका सम्बन्ध कर दिया। वासना तो प्रत्यक्ष अग्नि है। सुबह उन्होंने सुना कि सट्टेका दाँव उनके विपरीत रहा भड़कानेसे और भड़कती है। तनिकसे प्रोत्साहनसे विषैला है और वे सब कुछ हार गये हैं। रूप धारण कर लेती है। सेठजी विलासितामें डूबे; उनके 'मेरा सब कुछ चला गया। अब क्या करें? लोग क्या कहेंगे ? घरका मकान और दूकानें बेची जायँ, तभी परिवारमें पुन: वृद्धि होनी शुरू हुई। दो पुत्र और हो गये। नयी चिन्ताका जन्म हुआ। उनके पोषण-शिक्षणके अतिरिक्त मान-प्रतिष्ठा बच सकती है। वृद्धावस्थामें यह दुर्दिन भी देखना बदा था! क्या करूँ? आत्महत्या कर लुँ? या नवयौवना पत्नीके विलासी जीवनको तुप्त न कर सकनेसे वे स्वयं मन-ही-मन एक गुप्त वेदनाका अनुभव करते कहीं भाग जाऊँ ? लेकिन कर्जेवाले मुझे कब छोड़ेंगे।' रहते थे। भय था कि पत्नी पथभ्रष्टा न हो जाय। इधर अनेक समस्याएँ मनमें लिये वे मुझसे मिले, सलाह पृछी। व्यापारमें मन्दी आयी। काम ठप्प हो गया; हानि काफी मैं बोला, 'धन घीमें पडनेवाली अग्नि है। यह ऐसा हुई। आर्थिक आघात न सम्हाल सके। जायदादके आधार है, जो क्षणभरमें हट सकता है। इसका विश्वास बिकनेतककी नौबत आ गयी। जिस दिन उन्हें ज्ञात हुआ कभी न कीजिये। कुछ अनावश्यक मकान या जायदाद बेचकर बेहद जरूरतमन्द कर्जदारोंका ऋण चुका दीजिये। कि उनके दिवालेकी अफवाह बाजारमें है। उसी दिनसे उनिक्षानिभांक्ष्यानिक्ष्यानिक्ष्यानिक्ष्यानिक्ष्यानिक्ष्यानिक्षानिक्ष्यानिक्षयानिक्ष्यानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्षयानिक्

संख्या १०] धन औ	र सुख ११
\$	**************************************
पास है। नये जोश, ईमानदारी, संयम और मितव्ययतासे	यदि धनी चतुर हुआ, तो वह धनका सदुपयोगकर
व्यापार करेंगे, तो पुन: उसी स्थितिमें आ जायँगे।'	ऊपर लिखे कष्टोंसे मुक्ति पा सकता है। मनुष्यको धन
वे मेरी सम्मति मान गये। लगभग आधी जायदाद	कितना चाहिये? उत्तर सुन लीजिये—
बेच दी गयी। शेषसे पुन: व्यापार किया। आठ वर्षकी	साँई इतना दीजिये जामें कुटुम समाय।
निरन्तर साधनाके अनन्तर आज वे पुन: सम्पन्न स्थितिमें	मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥
आ गये हैं। उन्हें अब भी तृप्ति नहीं। आवश्यकताएँ	यही मर्यादा श्रेष्ठ है। अपनी आवश्यकताओंकी
बढ़ी हुई हैं। स्वास्थ्य चिन्तामें घुलता जा रहा है। कभी-	पूर्ति हो जाय तथा घरमें पधारनेवाले अतिथिका सत्कार
कभी स्वप्नमें अपनी पुरानी दुरवस्थाको देखकर व्यग्र	हो सके। यदि धनी दान, परोपकार, समाजसेवा, शिक्षा,
और अशान्त हो उठते हैं। धनको बनाये रखनेकी कृत्रिम	धर्मशाला-निर्माण आदिमें व्ययकर धनका सदुपयोग
चिन्ता उनके मनकी शान्ति और सन्तुलनको ठीक नहीं	करता चले, तो उसका गुप्त चिन्ता-भार हलका हो
होने देती। सारे दिन खोये-खोये-से रहते हैं।	जाता है तथा उदारता आती है। आत्मभाव उत्पन्न होनेसे
धनके संसर्गसे मोह और दर्पके अतिरिक्त मनुष्यमें	उसका कल्याण हो जाता है।
एक मिथ्या शान आ जाती है। नगण्य–सा होते हुए भी	रुपया जहाँ दूसरोंकी सेवा करने, गिरे हुओंको
वह स्वयं अपनेको बड़ा महत्त्वपूर्ण समझने लगता है।	उठाने, चलते हुओंको प्रोत्साहन देने, धर्म-कर्म करनेका
उसे अपनी बाहरी टीपटाप, मिथ्या प्रदर्शनकी भावनाका	अच्छा साधन है, वहाँ दुरुपयोगद्वारा भयंकर कुकृत्यों,
बड़ा ध्यान रहता है। यदि कभी संयोगवश धनकी कमी	व्यसनों, व्यभिचार, अनीति, अन्याय करनेका भी साधन
हो जाय, पूँजी अटक जाय, बाजार मन्दा हो जाय,	है। श्रेष्ठ मनुष्य धनकी शक्तिका सदुपयोग कल्याणकर
व्यापारमें घाटा आ जाय या चोरी हो जाय तो धनीके	रूपोंमें ही करता है। उसका अपने ऊपर प्रभुत्व नहीं छाने
तो जैसे प्राण ही निकल जाते हैं। धनके साथ उसे सदा	देता। रुपयेको एक साधनमात्र समझकर ग्रहण करता है,
ज्यों-का-त्यों बनाये रखनेकी अतृप्त इच्छा मनमें बनी	उसीको साध्य माननेकी गलती नहीं करता।
रहती है। इसीसे धनी व्यथित रहता है। उसका स्वास्थ्य	सच्चा सुख, शान्ति, आनन्द मनुष्यके मनमें रहनेवाले
नष्ट हो जाता है। चिन्ताओंके कारण न पूरी निद्रा आती	दिव्य आन्तरिक भाव हैं। सुख स्वास्थ्य और शक्तिके
है, न भोजन ही पचता है। फलत: वह अकाल मृत्युको	सदुपयोगमें है। सुख हमारे मनकी सन्तोषपूर्ण मन:स्थिति
प्राप्त होता है।	है। इसका सम्बन्ध ईमानदारी, अन्तरात्माकी सन्तुष्ट
धनी प्राय: कृपण होते हैं। लोभसे हमारे मनमें एक	स्थिति, विवेकशीलता और नि:स्पृहतासे है। जो व्यक्ति
संकुचितता प्रविष्ट हो जाती है। यह संकुचितता मनुष्यकी	कम पैसेवाले अथवा मजदूर होते हैं, वे धनके अनुचित
दैवी वृत्तियों (उदारता, प्रेम, दया, प्रसन्नता, सहानुभूति,	मोह, लालच या चिन्तामें कभी नहीं फँसते; सूखी रोटी
कोमलता, समवेदना)-का नाश कर देती है। धनी चाहे	खाकर भी तृप्त, दीर्घायु और चिन्तासे मुक्त रहते हैं,
बाहरसे मुसकराता दिखायी दे, अन्दरसे उदास, चिन्तित,	सड़कोंके किनारे पड़े हुए फकीर, खेतोंमें सतत परिश्रम
दुखी, अतृप्त बना रहता है। वह जनसाधारणमें न हँसकर	करनेवाले कृषक, फैक्टरीके मजदूर आदि धनियोंकी
बैठ सकता है, न पूरी आजादीका उपभोग कर सकता है।	अपेक्षा कहीं अधिक और विलक्षण तृप्त जीवनका
पूँजीपतियोंके व्यक्तिगत जीवन चिन्ता, कुढ़न और अतृप्तिका	सन्तोषामृत पान करते हैं।
भण्डार होते हैं। धनका जितना आधिक्य होता है, उसी	सुख, स्वास्थ्य और धन
अनुपातमें मिथ्या गर्व और चिन्ता बढ़ती रहती है। धन	अनेक व्यक्तियोंको यह भ्रम है कि मानव-शरीरके
जितना अधिक संग्रह किया जाता है, वह उतना ही गुप्त	स्वास्थ्य, शक्ति, सुख एवं आनन्दके लिये हमें बहुत-सा
मानसिक उत्तरदायित्वजनित भारकी सृष्टि करता है।	धन चाहिये। जबतक हमारे पास ताकतकी दवाइयों, तर

माल, घी, दूध, पौष्टिक भोजनके लिये पर्याप्त धन नहीं अलंकार मिल सकेंगे, पर सौन्दर्य नहीं; विद्या मिल सकेगी, पर विवेक नहीं; नौकर मिल सकेंगे, पर सच्ची है, हम तीन-चार बार मक्खन, दूध, बिस्कुट, बाजारकी अनेक वस्तुएँ मोल नहीं ले सकते, तबतक किस प्रकार सेवा नहीं; संगी-साथी अनेक इकट्ठे हो जायँगे, पर सच्चे स्वस्थ और सुखी रह सकते हैं? मित्र और हितैषी नहीं; ठकुर-सुहाती बातें खूब मिलेंगी, यह धारणा नितान्त भ्रान्तिमूलक है। निश्चय पर प्रेम नहीं। स्मरण रखिये, संसारकी उत्तम वस्तुएँ, जानिये, उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु एवं सुखके लिये धन स्वास्थ्य-सुख, यौवन और दीर्घजीवन प्राय: रुपये-पैसे अनिवार्य नहीं है। कम-से-कम आयवाले व्यक्ति अपने बिना ही प्राप्त हुआ करते हैं। दुनियामें ऐसा कोई माप नहीं मनकी सही स्थिति एवं शारीरिक, मानसिक परिश्रमद्वारा कि जिससे आनन्द, स्वास्थ्य, विवेक, प्रेम, निद्रा, शान्ति स्वस्थ और दीर्घायु रहे हैं, और रह सकते हैं। और शक्ति आदि दैवी तत्त्वोंका मृल्य आँका जा सके। धनकी यह अतृप्त तृष्णा यदि हमारे मनमें स्वस्थ रहने, शरीरको मजबूत धन एक ऐसा पदार्थ है, जिसे प्राप्त करनेपर बनाने, कुत्सित वृत्तियोंसे बचकर चलने तथा दीर्घकालतक जीवित रहनेकी उत्कट इच्छा है, तो स्वास्थ्यके साधारण उसको अधिकाधिक प्राप्त करनेकी कामना उत्तरोत्तर बढ़ती है। धनकी तृष्णा फ़ुँसमें लगी हुई अग्निके समान नियमोंके पालन, रूखा-सूखा खाकर और साधारण निरन्तर फैलती ही जाती है। हम यह समझें कि इतना

जावित रहनका उत्कट इच्छा ह, ता स्वास्थ्यक साधारण नियमोंके पालन, रूखा-सूखा खाकर और साधारण शारीरिक एवं मानसिक श्रम करके भी हम दीर्घजीवी रह सकते हैं। स्वस्थ रहनेमें धनकी कमी बाधक नहीं है। जो गरीब हैं, पर स्वास्थ्य-सुख एवं दीर्घजीवनके इच्छुक हैं, उन्हें किसी अवस्थामें हतोत्साहित नहीं होना चाहिये। सुख तो मजबूत, सादे, उच्च विचारवाले जीवनमें निवास करता है। भरपेट सूखी रोटी खाइये और जी-तोड़ परिश्रम कीजिये, सन्तोषामृत पीजिये तथा गन्दे व्यसनोंसे बचे रहिये। परमेश्वरकी इस सृष्टिमें आप रुपयेके मालिक न सही, स्वास्थ्य एवं शक्तिके स्वामी अवश्य रहेंगे। कल्पना कीजिये, यदि रुपयेसे स्वास्थ्य और दीर्घजीवन खरीदा जा सकता, तो क्या बड़े-बड़े पूँजीपित, ऐश्वर्यशाली अधिपित, जागीरदार, बड़े-बड़े अफसर, व्यापारी कभी मरते। वे बाह्य दृष्टिसे भले ही मोटे-तगड़े प्रतीत हों, किंतु

अन्दरसे खोखले, जीर्णरोगी, अतृप्त हैं। रुपयेसे वे ऐसी

वस्तुएँ खरीद सकते हैं, जिनके उपयोगसे शक्ति प्राप्त हो

और जीवनकी तृष्णा बूढ़े होनेपर भी जीर्ण नहीं होती— वह सदा नयी ही बनी रहती है। अधिक धनके मोहसे बड़े सावधान रहें। महर्षि कश्यपने कहा है, यदि ब्राह्मणके पास धनका अधिक संग्रह हो जाय, तो यह उसके लिये अनर्थका हेतु है; धन-ऐश्वर्यसे मोहित ब्राह्मण कल्याण प्राप्त नहीं करता। धन-सम्पत्ति अनुचित मोहमें डालनेवाली होती है; मोह

कमानेके पश्चात् और आवश्यकता न होगी, तो ऐसी

बात नहीं। यह तो वृद्धावस्थातक चलती ही रहती है।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।

जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥

बाल पक जाते हैं और दाँत भी टूट जाते हैं, किंतु धन

जब मनुष्यका शरीर जीर्ण होता है, तब उसके

महर्षि भरद्वाजने सत्य ही कहा है-

भाग ९४

सकती है, पर शर्त यह है कि वह पच सके। पाचन रुपयेमें नरकमें गिराता है, इसिलये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको नहीं है। भूखमें स्वाद है। शारीरिक शिक्तके लिये आपको अनर्थके साधनभूत अर्थका दूरसे ही पिरत्याग कर देना पिरश्रम, संयम और व्यायामका धन अपेक्षित है। धनसे चाहिये। जिसको धर्मके लिये धनकी इच्छा होती है, आप ऐश्वर्यशाली बन सकेंगे, किंतु सच्चा आनन्द और उसके लिये उस इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है। धनके द्वारा शान्ति आपको कदािप प्राप्त न हो सकेंगे। रुपयेसे चश्मा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील है। मिलेगा, पर दृष्टि नहीं; कोमल शय्या मिलेगी, पर गहरी दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म निद्रा नहीं; निस्तब्धता मिलेगी, पर हार्दिक सन्तोष नहीं; है, वही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'कल्याण'में श्रीगोपांगनाओंके सम्बन्धमें बहुत श्रीगोपांगनाओंमें मधुर भावकी पूर्ण अभिव्यक्ति

कुछ लिखा जा चुका है। वास्तवमें ये गोपरमणियाँ प्रेम-जगत्की तो परम आदर्श हैं ही, नारी-जगत्में

भी इनकी कहीं तुलना नहीं है। विश्व तो क्या भगवत्-राज्यमें भी किसी भी नारीके चरित्रमें नारी-

जीवनकी महिमामयी सेवाकी ऐसी आदर्श मनोहर

सहज मूर्तिका वैसा विकास नहीं हुआ, जैसा कि श्रीगोपांगनाओंमें हुआ है। सावित्री, अरुन्धती, लोपामुद्रा, उमा, रमा—िकसीकी उपमा श्रीगोपांगनाओंके साथ नहीं दी जा सकती। आत्मसुख-लालसाकी गन्धसे रहित होकर केवल अपने प्रियतम श्रीकृष्णको सुखी

करनेके लिये ही जीवन धारण करना, लोक-परलोक, भोग-मोक्ष सब कुछ भूलकर प्रियतमकी रुचिके अनुसार अपने जीवनकी क्षण-क्षणकी समस्त क्रियाओंका सहज

सम्पादन करना ही गोपी-प्रेम है। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, उनमें किसी भी वासना-कामनाका अलग अस्तित्व नहीं है, पर वे परम प्रेमास्पद

भगवान् श्रीगोपांगनाओंके प्रेम-सुखका आस्वादन करने-करानेके लिये अपने भगवत्स्वरूप मनमें नित्य नयी-नयी विचित्र वासनाओंका उदय करते हैं और भगवान्की

उन प्रतिक्षण उदय होनेवाली नित्य नवीन वासनाओंके अनुकूल अपनेको निर्माण करके भगवानुको सुख पहुँचाना केवल श्रीगोपांगनाओंके ही शक्ति-सामर्थ्यसे सम्भव

है, बस, प्रियतमकी रुचिको—चाहको पूर्ण करना ही जिनके जीवनका स्वरूप है, जिनकी प्रत्येक स्फुरणामें,

प्रत्येक संकल्पमें, प्रत्येक चेष्टामें, प्रत्येक शब्दमें और प्रत्येक क्रियामें केवल प्रेमास्पद श्रीकृष्णकी दिव्य प्रेमजनित वासनापूर्तिका ही सहज सफल प्रयास है; उन श्रीगोपांगनाओंकी तुलना कहीं, किसीसे भी नहीं

हो सकती।

है। इस मधुर भावसे ही मधुर रसका प्राकट्य होता है। एक महात्माने बताया है कि यह मधुर रस तीन प्रकारका होता है। तीनों ही अत्यन्त मूल्यवान् हैं, पर

एककी अपेक्षा दूसरा अधिक उत्कृष्ट और मूल्यवान् है। जैसे साधारण मणि, चिन्तामणि और कौस्तुभमणि। साधारण मणिका जैसे साधारण मूल्य होता है, वैसे ही श्रीकृष्णके प्रति कुब्जाकी प्रीतिका मूल्य साधारण है। श्रीकृष्ण-सम्पर्कसे महाभागा होनेपर भी उसमें

श्रीकृष्णकी सेवा करके केवल अपने ही सुखका सन्धान था। इसीसे उसे 'दुर्भगा' कहा गया। चिन्तामणि जहाँ-तहाँ सहजमें नहीं मिलती। उसका मूल्य भी बहुत अधिक है। सब लोग उतना मूल्य दे ही नहीं सकते; ऐसे ही श्रीकृष्णकी पटरानियोंकी दिव्य प्रीति है। श्रीकृष्णका

रतिका नाम समंजसा है। श्रीगोपांगनाका प्रेम साक्षात् कौस्तुभमणिके सदृश है। चिन्तामणि तो दस-बीस भी मिल सकती है, पर कौस्तुभमणि तो एक ही है और वह केवल श्रीभगवान्के कण्ठकी ही भूषण है, वह दूसरी जगह कहीं भी नहीं मिलती। इसी प्रकार श्रीगोपांगनाकी प्रीति भी श्रीकृष्णकी मधुर लीलास्थली

व्रजके सिवा अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। ऐसा प्रेम श्रीगोपांगना ही जानती है, कर सकती है। और यह प्रेम, इस प्रेमके एकमात्र पात्र श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर मुरलीमनोहर गोपीवल्लभ श्रीकृष्णके प्रति ही हो सकता

भी सुख और अपना भी सुख—उनमें इस प्रकारका

उभय सुखी भाव बना रहता है, इसलिये उनकी इस

है। इस दिव्य प्रेम-सुधारसका अनन्त अगाध समुद्र नित्य-नित्य लहराता रहता है-गोपीहृदयमें। इसीसे यह अनुपमेय, अतुलनीय और अप्रमेय है। इसीलिये गोपी-हृदयको प्रेमसमुद्र कहा गया है।

ममता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरवाले) श्रीविष्णुपुराणमें एक श्लोक है-और सब अपना-अपना व्यवहार करने लगे। क्योंकि सृष्टिकी रचना प्रकृतिसे हुई है, इसलिये वह ममेति मूलं दु:खस्य निर्ममेति च निर्वृति:। शुकस्य विगमे दुःखं न दुःखं गृहमूषिके॥ स्वभावसे ही विकारवाली है। इसका अर्थ यह है कि

भाव यह है कि ममता ही दु:खका मूल है और कहीं

ममता न बाँधना ही परम सुख-शान्तिका उपाय है। मनुष्य

शुक पालता है। उसको खिलाता-पिलाता है और पुत्रवत्

उसमें ममता रखता है। इससे शुकके मरनेपर, मनुष्य शोक

करता है। पक्षी तो प्रतिदिन हजारों मरते हैं, शुक भी कितने

ही मरते होंगे; परंतु उनके लिये किसीको दु:ख नहीं होता,

परंतु अपना पाला हुआ शुक जब मर जाता है, तब मनुष्य

शोक करता है। चूहे भी घरमें रहते हैं, परंतु उनके मरनेसे कोई शोक नहीं करता; क्योंकि उनमें मनुष्यका ममत्व-सम्बन्ध नहीं बँधा होता। इसलिये ममता ही दु:खका मूल

है, यह इस श्लोकका तात्पर्य है। अब यह देखना है कि ममता क्या वस्तु है और वह

कैसे बँधती है ? 'मम' यानी मेरा और मेरापनका जो भाव है, वही ममता है। जो 'मेरा' नहीं है, उसमें भी 'मेरा है' यह भाव हो जानेपर उसमें ममता बँध जाती है और

ममताके विषयके वियोगसे दु:ख हुए बिना नहीं रहता। ममता कैसे बँधती है-यह समझनेके लिये शास्त्रने जगत्को दो भागोंमें बाँट रखा है-

ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन निर्मिता। जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारः जीवकल्पितः॥ परमात्मा योगनिद्रामें सोये थे। जागकर देखा तो

कुछ भी दीख न पड़ा, तुरंत ही संकल्पकी स्फूर्ति हुई 'एकोऽहं बह स्याम'—मैं अकेला हूँ, अनेक रूप हो

जाऊँ - यह संकल्प प्रकृतिके ऊपर प्रतिफलित होते ही

उसके गुणोंमें क्षोभ हुआ और उससे विविध प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई। सृष्टि उत्पन्न तो हुई, परंतु उसमें कोई क्रिया या गित न दीख पड़ी, इससे जैसे सूर्य अपनी अनन्त किरणोंसे सारे ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, पदार्थों में रूपान्तर होता रहता है। एक प्राणी उत्पन्न होता है, कुछ समयतक रहता है और फिर नाशको प्राप्त होकर

अपने उपादान कारणमें मिल जाता है। शास्त्रोंने इस विकारकी छ: अवस्थाएँ (उत्पन्न होना, जीवित रहना, रूपान्तर होना, बढ़ना, घटना और मर जाना) बतलायी हैं,

परंतु यहाँ तीन विकारोंके समझ लेनेपर भी काम चल जायगा, यानी उत्पन्न होना, जीना और मर जाना। इस ईश्वरनिर्मित यानी ईश्वरके द्वारा रची हुई सृष्टिमें कुछ नया उत्पन्न नहीं होता तथा कुछ नाशको भी प्राप्त

नहीं होता, केवल रूपान्तर हुआ करता है। उसको हम उत्पत्ति-विनाश कहते हैं। उदाहरणार्थ—एक गेहुँका दाना जमीनमें बोया गया, वह जमीनमें मिल गया और उससे एक अंकुर निकला, अंकुरके बढ़नेपर उससे अनेकों गेहुँके दाने उत्पन्न हुए। पंचमहाभूतसे उत्पन्न हुआ दाना

फिर पंचमहाभूतमें मिल गया और पंचमहाभूतमेंसे अंकुर उत्पन्न हुआ और उसमेंसे फिर गेहूँके दाने उत्पन्न हुए। इसी प्रकार जैसे समुद्रसे तरंगें उत्पन्न होती और विनाशको प्राप्त होती दीख पड़ती हैं, उसी प्रकार पंचमहाभूतोंसे भी तरंगें भी उत्पन्न होती और विनाशको प्राप्त होती दीख

पड़ती हैं, परंतु वस्तुत: न तो कुछ उत्पन्न होता है और न विनाशको प्राप्त होता है। यह बात दृष्टान्तसे समझनेपर ठीक समझमें आ जायगी। एक बकरी है। वह चरती-चरती दूर जंगलमें

निकल गयी और एक बाघने उसको मार डाला। बकरीकी मृत्युसे ईश्वरकी सृष्टिमें कुछ भी कमी न हुई। पंचमहाभूतोंसे बकरीका शरीर उत्पन्न हुआ था, वह फिर

पंचमहाभूतोंमें मिल गया। बाघका खाया हुआ भाग

विष्ठा बनकर पृथ्वीमें मिल जायगा और शेष भाग भी उसी प्रकार परमात्माने अपने अनन्त अंशोंसे सृष्टिमें अपने-आप अपने-अपने उपादानमें मिल जायँगे। चेतन प्रविशासियां, तर्मी इस्मिप सारा स्विधि प्रविश्वास के प्रव

संख्या १०] मम	ाता १५
**************************************	**************************************
उसमें घट-बढ़ सम्भव नहीं, इसीलिये बकरीकी मृत्युसे	है ? क्योंकि सारी तरंगें समुद्ररूप हैं, इसी प्रकार सारे
ईश्वररचित सृष्टिमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ।	प्राणी ईश्वररूप ही हैं।
पंचमहाभूतकी एक तरंग बकरीके रूपमें दिखलायी दी	एक आदमीने एक घर बनाया। ज्यों-ज्यों घर तैयार
थी। वह थोड़ी देर रहकर फिर पंचमहाभूतमें मिल गयी।	होता जा रहा है-त्यों-ही-त्यों उस आदमीके चित्तमें
अब इस बकरीमें जिस मनुष्यकी ममता है; यानी	घर-विषयक ममताकी छाप पड़ती जा रही है। घर पूरा
'यह बकरी मेरी है'—ऐसा जो मानता है और उसमें	तैयार होनेपर चित्तमें छाप भी खूब गहरी पड़ गयी।
सुख पाता है, उस मनुष्यको बकरीके विनाशसे दु:ख हुए	दैवयोगसे चार-छ: महीनेमें उस घरमें आग लग गयी और
बिना न रहेगा। इस दु:खके होनेका कारण बकरीकी	वह घर नष्ट हो गया। वह मकान जब तैयार हुआ, तब
मृत्यु नहीं, मनुष्यने जो ममताकी छाप अपने अन्त:करणमें	ईश्वरकृत सृष्टिमें कोई वृद्धि नहीं हुई; क्योंकि पंचमहाभूतोंके
डाल रखी थी, उस छापके नाश होनेपर उसको दु:ख	बने विविध पदार्थ ही घररूप बन गये थे। इसी प्रकार
होता है और वह छाप जितनी अधिक गहरी होती है,	घरका नाश होनेपर उसमें कोई कमी नहीं हुई। जो
दु:ख भी उतना ही अधिक होता है। यह बात शास्त्रमें	पंचमहाभूतके पदार्थ घररूपमें दिखलायी पड़ते थे, वे उस
इस प्रकार समझायी गयी है—	रूपको छोड़कर दूसरे रूपमें जा रहे, परंतु मकान-
चिन्तां कुर्यान्न रक्षायै विक्रीतस्य यथा पशोः।	मालिकको शोक हुए बिना नहीं रहेगा; क्योंकि उसने उस
तथाऽर्पयन् हरौ देहं विरमेदस्य रक्षणात्॥	घरमें ममता बाँधी थी कि यह घर मेरा है। ममताकी छाप
जबतक बकरी अपने कब्जेमें है, तबतक उसे	जितनी गहरी होगी, उतना ही दु:ख भी अधिक होगा।
खिलाने-पिलाने और दुहनेका तथा रक्षा करनेका भार	अब मान लो कि घर तैयार हो गया और तुरंत ही
अपने सिरपर है, परंतु किसी कारणवश उस बकरीको	कोई अच्छा ग्राहक मिल गया तथा उस आदमीने उसको
बेच दिया या किसीको दे दिया जाय, तो उस दिनसे उस	वह घर बेच दिया। बेच डालनेके बाद उस घरमें आग
विषयसे अपनी सारी चिन्ता दूर हो जाती है। बकरीका	लगी और वह जलकर खाक हो गया, परंतु इससे उस
वियोग तो यहाँ भी हुआ है, परंतु अपनी इच्छासे उसका	आदमीको कुछ भी दु:ख न होगा; क्योंकि उस आदमीने
त्याग करनेके कारण हमने अपने चित्तसे बकरीकी छाप	उस मकानके प्रति अपनी ममताकी छाप अपने चित्तसे
स्वयं मिटा डाली है, इसलिये बकरीका वियोग हमें दु:ख	मिटा डाली। यदि घरके विनाशसे दु:ख हुआ होता तो
नहीं देता। इस प्रकार यदि मनुष्य ज्ञानदृष्टि प्राप्त करके,	उस आदमीको दोनों हालतोंमें दु:ख होना चाहिये था।
अपने शरीरके सहित सारे प्राणी-पदार्थ ईश्वरके हैं,	इस प्रकार 'अन्वयव्यतिरेक युक्तिसे' सिद्ध होता है कि
अतएव उन्हें ईश्वरको सौंप दे, अन्त:करणपर ममताकी	ममताके कारण ही दु:खका अनुभव होता है। अन्वय
छाप न पड़ने दे, तो उन-उन प्राणी-पदार्थोंके वियोगसे	अर्थात् जहाँ ममता है, वहाँ दु:ख भी है। इसलिये पहली
मनुष्यको दुःख न हो।	हालतमें घर बेचनेके पहले जब आग लगी, तब घरमें
'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'	ममता थी, इसलिये दु:ख भी हुआ और व्यतिरेक यानी
—इस श्रुतिका तात्पर्य भी यही है। एक ही ईश्वर	अभाव—अर्थात् जहाँ ममता नहीं है, वहाँ दु:ख भी नहीं
जब अनेक रूप हो गया है, जिस ज्ञानीको इसकी	है। इसलिये घर बेचनेके बाद आग लगनेपर उसमें ममता
साक्षात्कार-प्रतीति हो गयी है, वह किस प्राणी या	न होनेके कारण दु:ख भी नहीं रहा।
पदार्थमें ममता बाँधकर उसको अपना कहेगा या किस	एक दूसरा दृष्टान्त लीजिये। एक गृहस्थ है। उसका
प्राणी-पदार्थको पराया समझकर उससे द्वेष ही करेगा?	एक लड़का है, उसको पढ़ा-लिखाकर तैयार किया और
समुद्र किस तरंगको अपनी समझकर उसमें ममता बाँधता	यहाँकी पढ़ाई पूरी होनेपर उसको अधिक पढ़नेके लिये
है और किस तरंगको परायी समझकर उसे दूर रखता	विदेश भेजा। वहाँ वह पढ़ने और आनन्द करने लगा, परंतु

भाग ९४ होता है। ईश्वरने पृथ्वी बनायी तो मनुष्यने, जितनी देख-किसी शत्रुने ऐसी खबर भेज दी कि वह लडका मर गया। यह खबर मिलनेपर पिताके हृदयमें जो ममताकी छाप भाल कर सकता था, उतनी जमीनको घेर लिया और 'यह खेत मेरा है', यह बाग मेरा है—इस प्रकारका पुत्रके प्रति थी, वह नष्ट हो गयी और इससे उसके ममत्व बाँध लिया। दूसरे मनुष्यने भी वैसा ही किया और दु:खका पार न रहा। अब इससे उलटा दृष्टान्त लीजिये। फिर कहा कि 'यह खेती-बारी मेरी है और वह तेरी लड़का सचमुच मर गया है, परंतु इस विषयका समाचार किसीने उसके पिताको न दिया। इस प्रसंगमें लड़का तो है।' फिर ईश्वर-निर्मित जमीनके नन्हे-नन्हे टुकडोंके मर गया है, परंतु पिताके चित्तमें जो ममताकी छाप है, वह ऊपर मनुष्योंने ईश्वरके उत्पन्न किये हुए साधनोंके द्वारा नष्ट नहीं हुई, इससे उसको किसी प्रकारका दु:ख भी नहीं ही घर बनाया और उसमें भी यह घर मेरा, यह घर तेरा हुआ। वह स्वाभाविक रीतिसे खाता है, पीता है, आमोद-और वह दूसरेका-इस प्रकार ममत्वका व्यवहार हो गया। आगे चलकर ईश्वरकी ही सृष्टिसे पदार्थोंको ले-प्रमोद करता है। अब यदि लड़केकी मृत्युसे ही दु:ख हुआ होता तो इस बार उसे दु:ख होना चाहिये था। इससे यह लेकर उनमें विविध रूपान्तर करके अनेक प्रकारके सिद्ध होता है कि दु:ख होनेका कारण पुत्रका वियोग सुखके साधन तथा विभिन्न जातिके दु:ख देनेवाले और विनाशकारी साधन बनाये और उनमें भी मेरा-तेराका नहीं, बल्कि ममताकी छापका मिटना है। व्यवहार चालु हो गया। मनुष्यसे नया एक तिनका भी वहीं लड़का परदेशमें पढ़ता है, परंतु वहाँ उसने दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया है और वहीं शादी करके वह पैदा नहीं हो सकता। सृष्टिमें सामग्री है, उसीमें रूपान्तर रह जाना चाहता है और माता-पिताका मुँह भी नहीं देखना कर-करके वह विविधताकी रचना करता है और गर्व चाहता, बल्कि पितासे द्वेष करता और उसका बुरा चाहता करता है कि 'यह मैंने किया।' इस प्रकार ईश्वरके बनाये हुए तत्त्वोंमें रूपान्तर करके मनुष्य 'मेरे–तेरे' के संसारकी है। यह समाचार जब उसके पिताको मिलता है, तब रचना करता है—यह बात तो हुई जीवके पदार्थसंग्रहके पिताको क्षणिक आघात तो होता है, पर वह अपने चित्तसे उसके विषयमें जो ममताकी छाप थी, उसे मिटा देता है। विषयकी। अब प्राणियोंका संग्रह वह किस प्रकार करता ऐसा होनेपर 'पुत्र मरे या जीये' इस विषयमें उदासीन हो है, यह देखना है। जीव जब मनुष्यशरीर धारण करके जाता है। इसलिये ममता ही दु:खका कारण है। माताके गर्भसे बाहर निकलता है, तब वह सर्वथा अचेत अबतक हमने यह देखा है कि ईश्वरनिर्मित सृष्टिमें दशामें रहता है, इसलिये परमात्मा उसकी सँभाल रखनेके लिये उसको एक माता प्रदान करता है। बालक कुछ भी घट-बढ़ नहीं होती। केवल रूपान्तर हुआ करता कुछ बड़ा होता है, तब उससे परमात्मा पूछता है— है। नाम-रूपकी तरंगें पंचभूतके समूहमें उठा करती हैं और नाशको प्राप्त होती हैं और उन तरंगोंको नचानेवाली 'भाई! यह कौन है?' उत्तर मिलता है—'यह मेरी माँ चेतन सत्ता तो एक और सर्वव्यापक है। दु:ख होता है तो है।' उसके बाद परमात्माने उसी माँसे दो-चार बच्चे केवल ममताके कारण ही। यदि ईश्वरके प्राणी-पदार्थों में और दे दिये और फिर उससे पूछा—'भाई! ये कौन हैं?' मनुष्य ममत्व-सम्बन्ध न बाँधे, तो दु:ख होनेका दूसरा जवाब मिलता है—'ये तो मेरे भाई-बहन हैं।' पश्चात् कोई कारण नहीं है। परमात्मा उसका एक स्त्रीसे ब्याह कराता है और उसके अब जीव अपना संसार कैसे बनाता है, यह देखिये— पेटसे दो-तीन बच्चे देता है और फिर पूछता है—'भाई! ये कौन हैं?' जवाब मिलता है—'मैं खुद जाकर इस 'जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारः जीवकल्पितः।' इसका अर्थ यही है कि जीव स्थूलशरीर धारणकर स्त्रीको ब्याहकर लाया था। क्या आपने नहीं देखा सो माताके पेटसे निकलकर मरणपर्यन्त 'मेरा-मेरा' करता यों पूछ रहे हो? और फिर मेरी स्त्रीके पेटसे पैदा हुए हुआ प्राणी-पदार्थींका संग्रह करता है, यह जीवकी बच्चोंके विषयमें तो पूछना ही क्या है?' इस प्रकार कल्पनाका संसार है। अब देखना है कि यह किस प्रकार अनादिकालसे जीव प्राणियोंका संग्रह करता हुआ चला

संख्या १०] आ रहा है और जबतक वह ईश्वरकी वस्तु ईश्वरको जीवका संसार अलग-अलग ही होना चाहिये। यह नहीं सौंप देता, तबतक उसका भटकना बन्द नहीं होता। संसार यदि सच्चा होता तो शरीरके मरणसे जीवका यह जीव-रचित संसार तो उसकी कल्पनामात्र है, अपने संसारके साथ सम्बन्ध नहीं छूटता, परंतु हम इससे इसमें घट-बढ़ होती ही रहती है और इससे अपने प्रत्यक्ष देखते हैं कि शरीरके छूट जानेपर उस शरीरके संसारमें वृद्धि होनेपर वह आनन्द मानता है तथा हानि द्वारा रचा हुआ संसार भी छूट जाता है और जीव जब दूसरा शरीर धारण करता है, तब वहाँ भी नया संसार होनेपर हाय-हाय करता है। एक बार परमात्माको इस मनुष्यकी स्त्रीकी जरूरत हुई। उसको अपनी सृष्टिका रचता है और गत शरीरके संसारकी उसे स्मृति भी नहीं दुसरा काम सौंपना था, इससे परमात्माने उससे कहा-होती। हमारे सभीके पिछले जन्ममें हमारी कल्पनाके 'तुमको दी हुई स्त्री मुझे वापस चाहिये।' तो वह कहता संसार रहे ही होंगे; परंतु आज उनकी स्मृति भी नहीं है, है—'वह तो मेरी है, उसे मैं तुमको क्यों दूँ?' तब इससे यह समझना चाहिये कि जीवके रचे संसारमें परमात्मा उसे थप्पड़ मारकर उसकी स्त्री वापस ले लेता उसकी अपनी कल्पनाके सिवा और कुछ भी नहीं है। है और वह मनुष्य मुँह बाये रोता खड़ा रहता है। अब देखो, ईश्वरकृत सृष्टि कुछ बन्धनकारक नहीं अब देखो, उस मनुष्यके संसारमें एक मनुष्य कम हो है। वह तो शरीरके निर्वाहमें तथा सच्ची समझ प्राप्त गया, परंतु इससे ईश्वरकी सृष्टिमें कुछ भी फेर-फार नहीं करनेमें सहायक होती है। बन्धनकारक तो है—'मेरे और हुआ; क्योंकि वह स्त्री फिर नया शरीर धारणकर अपने तेरेकी कल्पना।' जो ईश्वरका है, उसे 'मेरा' मानकर नये वेशमें ईश्वरकी सृष्टिमें किसीके संसारमें रहेगी ही। संसार रचना करनेसे बन्धनकारक होता है। इसीका नाम ईश्वरकृत सृष्टि और जीवकल्पित संसारको एक माया है और जबतक जीव मायाको नहीं छोड़ता, नाटककी उपमा दें तो ठीक समझमें आ जायगा। सम्पूर्ण तबतक उसका जन्म-मरण बन्द नहीं होता। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—'*मैं अरु मोर तोर तैं* नाटक यह ईश्वरनिर्मित सृष्टि है और उसका एक-एक माया।'यानी 'यह मैं और यह मेरा', 'यह तू और यह दृश्य जीव-विशेषका संसार है। एक नाटकमें अनेक दृश्य होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक जीवका संसार पृथक्-पृथक् तेरा'—यही मायाका स्वरूप है।'मैं और मेरा' छोड़ दे होता है। किसी-किसी दृश्यमें पाँच आदमी अधिक भी और सब कुछ ईश्वरका है—ऐसा मान ले तो मायाके आते हैं और किसी-किसी दृश्यमें ऐसा होता है कि दो-बन्धनसे जीव मुक्त हो जाय। चार आदमी उसमेंसे चले भी जाते हैं। किसी दृश्यमें जन्म श्रीशंकराचार्यजी कहते हैं कि 'अहं ममेति होता है, तो किसीमें मृत्यु भी होती है। किसीमें लड़ाई चाज्ञानम्'—यानी 'मैं और मेरा' की कल्पना ही अज्ञान होती है, तो किसीमें उत्सव भी मनाया जाता है। इस प्रकार है। अज्ञान अर्थात् अविद्या या माया। दृश्योंमें विविधता रहती ही है और उनमें घट-बढ़, हानि-ज्ञान-अज्ञानकी परिभाषा करते हुए श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि 'मैं और मेरा' यही अज्ञान है और लाभ, सुख-दु:ख, मान-अपमान, जन्म-मरण आदि भी 'तू और तेरा' यही ज्ञान है। होते ही रहते हैं; ऐसा न हो तो उसका नाम नाटक नहीं, परंतु सारे नाटकका विचार करें तो कहीं भी घट-बढ श्रुति भगवती भी कहती हैं—'ममेति बध्यते आदि द्वन्द्व देखनेमें नहीं आते; क्योंकि जो घट-बढ जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते।' यानी 'मैं और मेरा' यही दृश्योंमें दीखती थी, वह सच्ची नहीं थी, परंतु ममताके जन्म-मरणरूपी बन्धनका कारण है और सब कुछ-कारण जीवकी अपने-आप कल्पना की हुई थी। अपने-आप भी ईश्वरका है, यों माननेका नाम मुक्ति है। ममताका अर्थ है 'बन्धन' और ममताके त्यागका यह जीवकल्पित संसार केवल जीवकी कल्पना ही अर्थ है 'भव-बन्धनसे मुक्ति।' ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। है, इसलिये अपनी-अपनी कल्पनाके अनुसार प्रत्येक

िभाग ९४ अनुभूतिमें बाधा—सुखलोलुपता साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) असम्भव बात है। बहुत दु:ख भोगना पड़ेगा और प्रश्न—भगवतत्त्वकी अनुभूति कैसे हो? इसका उत्तर यह है कि आप संयोगजन्य सुखकी आसक्ति निश्चय ही भोगना पड़ेगा। यह सब जानते हुए भी मनुष्य मिटाइये तो अभी अनुभव हो जाय। संयोगजन्य सुखमें सुखकी इच्छा क्यों नहीं छोड़ता है—बात क्या है? जो आकर्षण है, यही मुख्य बीमारी है। विचार करनेसे वर्तमानमें संयोगसे जो सुख होता है, उसका जितना यह बात ठीक समझमें आती है कि इस संयोगजन्य आकर्षण है, उसकी जितनी प्रियता है और उसपर सुखकी लालसाने ही भगवत्तत्त्वकी अनुभूति नहीं होने दी जितना विश्वास, भरोसा है, उतना परिणामपर विचार है। संयोगजन्य सुख अर्थात् पदार्थीं, व्यक्तियों, परिस्थितियों, नहीं है। इसका विचार ही नहीं करते कि इस सुखासिकका घटनाओंके सम्बन्धसे जो सुख मिलता है, वह नित्य परिणाम क्या होगा? मनुष्यको विचार आता भी है तो वह आँख मीच लेता है अर्थात् वह उस परिणामको निरन्तर कैसे रहेगा? क्योंकि जिनके सम्बन्धसे सुख मिलता है, वे उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं तो इनके ठीकसे जानना नहीं चाहता। इसलिये भगवानुने राजसी सुखका वर्णन करते हुए कहा है कि विषयेन्द्रिय-

सम्बन्धसे अनुत्पन्न सुख कैसे मिलेगा ? इसलिये संयोगसे मिलनेवाला सुख असह्य हो जाय, कृत्रिम सुखका त्याग कर दिया जाय, तो वह सहज सुख स्वत: प्रकट हो जायगा, स्वाभाविक सुखकी स्वतः अनुभूति हो जायगी; क्योंकि यह स्वयं सुखस्वरूप है-ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥ जबतक अस्वाभाविक सुखका त्याग नहीं करेंगे, तबतक—हमारा सम्बन्ध संसारसे नहीं है, परमात्मासे हमारा स्वत:सिद्ध सम्बन्ध है—यह बात सुनते रहनेपर भी काम नहीं आयेगी। संसार नाशवान् है, क्षणभंगुर

है—ऐसी बातें सुन लें, याद कर लें, पर अनुभव नहीं होगा, संसार असत्य है-इस प्रकार संसारको असत्य कहनेसे, इस बातको सीख लेनेसे, याद करनेसे, संसारका

संयोगजन्य सुख प्रारम्भमें अमृतके तुल्य और परिणाममें विषकी तरह है—'विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव' (गीता १८। ३८) इसके परिणामका विचार मनुष्य ही कर सकता है; क्योंकि अन्य प्राणियोंको यह विवेक-शक्ति प्राप्त नहीं है, जिससे वे कर सकें। देवतालोग सुखके लिये ही देवलोकमें रहते हैं, उनका उद्देश्य ही भोगोंसे सुख लेनेका है, इसलिये वे इसके परिणामको क्या जानेंगे? इसे जाननेकी शक्ति मनुष्य-अपमान होता है, रोग होते हैं, शोक होता है, चिन्ता

सम्बन्ध नहीं छूटता। तात्पर्य है कि संसारको असत्य मान लेनेपर भी जबतक असत्यके द्वारा संयोगजन्य सुख लेते रहेंगे, तबतक संसारकी असत्यताका अनुभव नहीं होगा; कारण, आप असत्यके संयोगजन्य सुखको सत् मानते हैं और उस सुखको लेनेके लिये लोलुप रहते हैं, तो आप संसारकी असत्यताका कैसे अनुभव कर सकते हैं? प्रत्यक्ष बात है कि संयोगजन्य सुख लेनेसे दु:ख भोगना ही पडता है। कोई भी प्राणी ऐसा हो ही नहीं सकता, जो संयोगजन्य सुख तो भोगता रहे और उसे

शरीरमें ही है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि इस संयोगजन्य सुखके परिणामकी ओर निरन्तर दृष्टि रखे। सतत सोचे कि इसका परिणाम क्या होगा? सांसारिक सुखका परिणाम दु:ख होगा ही। भगवानुने गीतामें कहा है कि 'ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते' (५।२२)। जितने सम्बन्धजन्य सुख हैं, वे सब-के-सब दु:खोंके उत्पत्तिस्थान हैं। संसारमें जितने भी दु:ख होते हैं, जेल होता है, अपयश होता है,

होती है, व्याकुलता होती है, घबराहट होती है, बेचैनी होती है और नरकोंमें दु:ख पाते हैं-ये सब-के-सब दु:ख संयोगजन्य सुखकी लोलुपताके ही परिणाम हैं। इसलिये यह सुखलोलुपता ही मुख्य बीमारी है। दु:सिंगभीमांझान-पिंड्, उपयत्ति ब्दु:ख्रि: https://dass.og/dharma सुर्ख AAA Willer Valler LARY E&BY (क्रिप्रांग a सुर्थ Sar

संख्या १०] अनुभूतिमें बाधा	—सुखलोलुपता १९

लोलुपता बाधक है। सुख मिल जाय, सुख ले लूँ—यह	करते। साधन करते हैं तो केवल ऊपरी पाखण्डकी तरह
इच्छा जितनी बाधक है, उतना सुख बाधक नहीं है।	करते हैं। यद्यपि सत्संग करना, साधन करना दम्भ नहीं
कारण, सुख बेचारा आता है, चला जाता है, पर	है, पाखण्ड नहीं है, पर दिखावटीपनसे वास्तविक सत्संग
लोलुपता ज्यों–की–त्यों बनी रहती है। सुख नहीं है, उस	नहीं होता। सेवा करे तो उसमें भी दिखावटीपन।
समय भी लोलुपता रहती है कि सुख मिले। सुख है,	दूसरोंको सुख कैसे मिले, इसके लिये हार्दिक लगन नहीं
उस समय भी उसकी प्रियता रहती है और सुख चला	है। यदि भीतरसे यह लगन लग जाय कि दूसरोंको सुख
जाय तो भी उसके लिये प्रियता, आकर्षण, लोलुपता बनी	कैसे हो तो अपने सुखकी इच्छा छूट जायगी। एक ही
रहती है। वास्तवमें यही है बीमारी! गीता (५।६)-में	बात रहे कि दूसरोंको सुख देनेके लिये अपना तन, मन,
भगवान्ने इसको दूर करनेका सरल उपाय बताया है—	धन सभी खर्च करें। हमारा धन भी उधर लग जाय,
संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।	हमारा मन भी उधर लग जाय और शरीरसे भी उन्हींके
योगयुक्तो मुनिर्ब्नह्म नचिरेणाधिगच्छति॥	सुखके लिये हम श्रम करें। दूसरोंको सुख हो जाय, ऐसी
'योगके बिना संन्यास अर्थात् सांख्ययोग प्राप्त	लगन लग जाय तो उपर्युक्त प्रश्न हल हो जायगा।
करना कठिन है और योगयुक्त मुनि बहुत शीघ्र ब्रह्मको	तात्पर्य यह कि इस सुख-लोलुपताको मिटानेके
प्राप्त हो जाता है।'	लिये दूसरोंको सुख पहुँचाना है, गरीबोंको सुख पहुँचाना
'योगयुक्त किसे कहते हैं ?'' समत्वं योग उच्यते '	है, सबको सुख पहुँचाना है—यह उद्देश्य रखकर यदि
(गीता २।४८)। भगवान्ने समताको योग बताया है।	आपलोग सेवाके काममें लग जायँ तो हमें तो विश्वास
समताका अर्थ है—सुख मिले, चाहे दु:ख मिले, लाभ	है कि आपको लाभ अवश्य होगा। लाभ नहीं भी होगा
हो जाय, चाहे हानि हो जाय, कोई पैदा हो जाय, चाहे	तो हानि तो होगी ही नहीं। हानि दीखे तो मत लगिये,
कोई मर जाय, बीमारी आ जाय, चाहे स्वस्थ हो जाय,	हानि न दीखे तो ऐसा करके देखिये।
मान हो जाय, चाहे अपमान हो जाय, निन्दा हो जाय,	'सबको सुख पहुँचे'—यह सेवक-धर्म है। सेवा
चाहे स्तुति हो जाय—ये जो सुख-दु:ख आदिक द्वन्द्व	किसे कहते हैं ? सेवामें सेवकपनेका जरा भी अभिमान
हैं, इनसे अपनेमें कोई विकृति न आवे, इसका नाम है	न हो और जिन साधनोंसे सेवा की जाय, उनको कभी
'योग'। उस समतामें यदि स्थित रह जाय और इस	अपना न माना जाय अर्थात् अपने कहे जानेवाले शरीर,
सुख-लोलुपतासे बच जाय तो बहुत शीघ्र ब्रह्मकी प्राप्ति	इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, योग्यता आदि किसीको भी अपनी
हो जाय, देरीका काम नहीं।	न माने। जिनकी सेवा की जा रही है, उन्हींकी वस्तुएँ
अब प्रश्न उठता है कि इसको काममें कैसे लायें ?	उन्हींके काममें लग रही हैं—ऐसा भाव रहे। सेवासे मुझे
इसके लिये एक बात आप धारण कर लें कि दूसरोंको	उत्पन्न और नष्ट होनेवाली कोई वस्तु मिल जाय—यह
सुख कैसे पहुँचे ? दूसरोंका हित कैसे हो ? हर काममें	भाव ही मनमें न आवे। इसका नाम 'सेवा' है। यह
दूसरोंका आराम, भला, हित, सुख कैसे हो—यह सोचने	सेवा-धर्म बड़ा गहन है—' सेवाधर्मः परमगहनो
लग जायँ। यह बात ठीकसे आपकी समझमें आ जाय	योगिनामप्यगम्यः'। भरतजी महाराजने भी कहा है—
और आप उसे ठीक तरहसे करने लग जायँ तो बहुत	<i>'सब तें सेवक धरम कठोरा॥'</i> इसीको 'कर्मयोग'
शीघ्र आप इस संयोगजन्य सुखकी लोलुपतासे छूट	कहते हैं।
जायँगे।	सेवा करनेवालोंमें भी सच्ची लगनसे सेवा करनेवाले
हमें तो इस बातका दु:ख है कि आपलोग सत्संग	बहुत थोड़े होते हैं। अभी जो लोग सेवा कर रहे हैं, उन्हें
तो करते हैं, पर सत्संगमें गहरे उतरकर विचार नहीं	किस रीतिसे सेवा करनी चाहिये, यह बात बताता हूँ।

सबसे पहले अपने मनकी प्रधानता छोड दे। अपना आग्रह है कि अपनी मनमानी चाहना ही कामना है और अपनी कामनाके मिटानेका मुख्य उपाय यह है कि दूसरेके बिलकुल ही छोड दे, केवल सेव्यके मनकी ओर देखे कि वे कैसे प्रसन्न होंगे, किस तरहसे उन्हें सुख पहुँचे, मनके अनुकूल करे, पर वह न्याययुक्त हो, शास्त्रसम्मत

प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतरिहते रताः।' (१२।४) तात्पर्य है कि जो दूसरोंको, प्राणिमात्रको सुख पहुँचानेमें लगे हुए हैं, वे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति कर लेते हैं। व्याख्यान देते हुए कई वर्षींसे हमारे मनमें यह प्रश्न

उठता था कि यह कामना कौन-सी बीमारी है ? इसके

नाशका उपाय क्या है? इसकी जड़ कहाँ है? किस

जगहसे यह ठीक होगी? अब कई वर्षींसे यह बात

उनका कैसे भला हो, उनका हित कैसे हो-एकमात्र यही

उद्देश्य रह जाय तो गीता कहती है कि सब प्राणियोंके

हितमें जो रत हैं, वे परमात्माको प्राप्त होते हैं—'ते

ध्यानमें आयी है कि दूसरोंको सुख, आराम पहुँचाना ही इसके मिटानेका मुख्य उपाय है। ऐसे ही व्याख्यान देते वर्षों बीत गये, पर यह बात पकड़में नहीं आयी थी कि कामनाका क्या स्वरूप है ? अब यह बात ध्यानमें आयी

> श्रीराधा-कृष्ण-महारास-लीलाकी साक्षी 'शरत्पूर्णिमा' (श्रीअर्जुनलालजी बन्मल) पावस ऋतुके विदा होनेपर शरद्-ऋतुका आगमन

हुआ। एक समयकी बात है, संध्याके समय गगन-मण्डल सुरमई आभासे रचने लगा। ग्वाल-बालोंने गोवंशको वनसे लाकर खिरकमें बाँध दिया। इस समय

सारी गोपियाँ अपने घरोंके काम-काजमें व्यस्त हैं। कुछ गोपियाँ खिरकमें जाकर गायोंका दुग्ध-दोहन करने लगी हैं, किसी-किसी गोपीने उबलनेके लिये दूधकी हाँड़ी

चूल्हेपर रख दी, कोई गोपी अपने शिशुको स्तनपान कराने लगी, कोई अपने संध्याकालीन शृंगारमें लगी है, कोई भगवान्की पूजा-अर्चना कर रही है, तो कोई अपने पतिको भोजन करा रही है।

इस प्रकार अपना-अपना कर्तव्य-पालन करते हुए अर्धरात्रिका समय हो गया। सहसा ही,

हो और अपनी सामर्थ्यके अनुरूप हो—ऐसी बात उनके मनकी पूरी हो। इस विषयमें किसीको शंका हो तो वह जाँच ले। जहाँ जिस क्षेत्रमें रहिये, इस उपायको करके देखिये। इस उपायको काममें लाकर जाँच लीजिये। जैसे

भाग ९४

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने रामायणमें कहा है-कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम। जैसे लोभीको पैसा प्यारा लगे, कामीको कामिनी प्यारी लगे, इसी तरहसे हमें भी दूसरोंका हित प्यारा लगने लगे। दूसरेको आराम कैसे हो? मेरेद्वारा किसीको

भी कष्ट न पहुँचे, सुख ही पहुँचे-केवल यह लगन रहे। फिर देखो तमाशा! बहुत शीघ्र काम होगा। यह बडे महत्त्वका साधन है। वर्षोंतक विचार और चिन्तन करनेपर यह साधन मिला है। नारायण! नारायण!! नारायण !!!

कुल मर्जाद, बेद की आज्ञा, नैकहुँ नाहिं डरी।

स्याम सिन्धु सरिता ललना, गन जल की ढरनि ढरी॥

अंग मरदन करिवै को लागी, उबटन तेल धरी। जो जिहिं भांति चली सो तैसेहिं, निसि वन कौं जु खरी॥

सुत पति नेह भवन जन संका, लज्जा नाहिं करी। सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी॥

गोपियोंको चीर-हरणके समय श्रीकृष्णके वचनोंका स्मरण हो आया, जब उन्होंने कहा था, कि महारासके समय मैं तुम्हारी मिलनकी आकांक्षा पूरी करूँगा, आज

श्रीकृष्ण वह वचन साकार करने लगे हैं। आज शरद् पूर्णिमा है। वनमें श्रीकृष्णकी मुख्ति मुखरित हो उठी, उस मधुर ध्वनिको सुनकर उन्हें आभास हो गया कि

आज प्रियतमसे मिलनकी बेला है, वे सारा कामकाज छोड़कर वनकी ओर चलने लगीं। घरसे निकलते समय

जबहीं वन मुरली स्त्रवन परी। थिकत भई गोप कन्या सब, काम धाम बिसरी॥

कुलकी मर्यादा और वेदकी आज्ञाको बिसारनेसे भी

संख्या १०] श्रीराधा-कृष्ण-महारास-लं	ीलाकी साक्षी 'शरत्पूर्णिमा' २१
\$	**************************************
संकोचका अनुभव नहीं हुआ। श्यामसुन्दर सागर हैं,	सब उनकी अवहेलना करके आयी हो। जरा विचार
ब्रजबालाएँ नदियाँ हैं, जैसे प्राकृतिक रूपसे नदियोंका	करो, तुम सारी ब्रजबालाएँ सुन्दर हो, नवयौवना हो, क्या
प्रवाह सागरकी ओर गमनशील रहता है, उसी प्रकार ये	तुम्हारी जातिमें युवा बहू-बेटियोंको रात्रिमें बाहर निकलनेपर
गोपियाँ भी श्रीकृष्णकी ओर चली जा रही हैं। पुत्र और	लज्जा नहीं आती। यदि तुम्हारे परिजन यहाँ आनेके
पतिका प्रेम तथा लज्जाका इन्होंने त्याग कर दिया है।	बारेमें अनभिज्ञ हैं, तो तुम्हारा यह आचरण वेद और
इस समय ये गोपियाँ इतनी बेसुध हो गयी थीं कि	कुलकी मर्यादाके अनुकूल नहीं है, अत: उचित यही है
इन्हें अपने शरीरका भी भान नहीं रहा, श्रीमद्भागवत	कि तुम सभी इसी समय अपने घरोंको लौट जाओ।
(१०।२९।७)-में लिखा है—	श्रीकृष्णके मुखसे ऐसे अप्रिय वचन सुनकर गोपियाँ
लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।	कहने लगीं, हे नाथ!
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥	तुम पावत हम घोष न जाहिं।
कोई गोपी अपने शरीरपर केसर–चन्दनका लेप कर	काह जाइ लैहैं हम ब्रज, यह दरसन त्रिभुवन नाहिं॥
रही थी, नयनोंमें काजल लगा रही थी अथवा नये वस्त्र	तुमहूँ तै ब्रज हितु न कोऊ, कोटि कहो नहिं मानै।
धारण कर रही थी, या अपना शृंगार कर रही थी, उन	काके पिता, मातु है काकी, काहूँ हम नहिं जानै॥
सबने श्रीकृष्ण–मिलनकी उत्सुकतामें सारे कार्य अधूरे ही	काके पति, सुत मोह कौन कौ, घरही कहा पठावत।
छोड़ दिये। प्रेमदीवानी इन गोपियोंमें किसीने ओढ़नीको	कैसो धर्म, पाप है कैसो, आप निरास करावत॥
कमरमें बाँधा, किसीने लहंगा सिरपर ओढ़ लिया, किसीने	हम जानैं केवल तुमहीं कौ, और वृथा संसार।
गलेका हार कमरमें लटका लिया और किसीने करधनी	सूर स्याम निठुराई तजिये, तजिये वचन विकार॥
गलेमें पहन ली और चल पड़ीं परमप्रीतमसे मिलने।	तुम्हारा दर्शन पाकर अब हम अपने गाँव लौटकर
पागलोंकी भाँति दौड़ती हुई इन गोपियोंको उनके	नहीं जायँगी। इस समय जो हमें सौभाग्य मिला है, वह
परिजनोंने रोकना चाहा, परंतु जैसे नदीकी तीव्र जलधारा	तीनों लोकोंमें भी नहीं मिल सकता। हे कृष्ण! सम्पूर्ण
सागरमें विलीन होनेको तटोंके बन्धन तोड़ देती है, उसी	ब्रजमण्डलमें तुम्हारे सिवाय हमारा कोई भी हितैषी नहीं
प्रकार ये गोपियाँ आज परिवारके बन्धन तोड़ आधी	है। तुम भले ही करोड़ों बार हमें जानेको कहो, हम तुम्हें
रातके समय निर्भय होकर श्रीकृष्णसे मिलनकी आस	छोड़कर नहीं जायँगी। इस संसारमें कौन किसका पिता,
लिये गहन वनमें उनके पास पहुँच गयीं।	कौन किसका पति, किस पुत्रका मोह? तुम किसका
उन्हें देखकर परीक्षाके उद्देश्यसे श्रीकृष्ण कहने	वास्ता देकर हमें निराश करना चाहते हो? हम इस
लगे, हे गोपियो,	सम्पूर्ण सृष्टिमें केवल तुम्हें ही जानते हैं, तुम्हें ही
मातु पिता तुम्हरे धौं नाहीं।	पहचानते हैं। इसलिये हे माधव! हमारे प्रति अप्रिय
बारम्बार कमलदल लोचन, यह कहि कहि पछिताहीं॥	वचन और निष्ठुरता त्यागकर हमें अपना लीजिये।
उनकें लाज नहीं वन तुमको, आवत दीन्ही राति।	गोपियोंके मुखसे ऐसे करुण वचन सुनकर श्रीकृष्णने
सब सुन्दर सबै नवजोवन, निठुर अहीर की जाति॥	कहा—हे ब्रजसुन्दरियो! मैं तुम्हारी भावना-साधनासे
की तुम किह आई की ऐसेहिं कीन्ही कैसी रीति।	अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ, तुमने जिस फलकी प्राप्तिके
सूर तुमहि यह नही बूझिये, करी बड़ी विपरीति॥	लिये कठोर तपस्या की थी, आज वह फलीभूत हो रही
क्या तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं, जो तुम इस	है। आओ, मैं तुम्हारी कामनापूर्तिके लिये महारासकी
सुनसानमें यहाँ चली आयीं। यदि वे हैं तो उन्होंने रोका	रचना करता हूँ।
क्यों नहीं ? और यदि रोका भी होगा, तो निश्चय ही तुम	रासपंचाध्यायी-प्रकरणमें इस लीलाका सरस वर्णन

भाग ९४ करते हुए श्रीमद्भागवत (१०।२९।४५)-में लिखा है— वायु, भूमिपर चारों ओर छिटकती चाँदनी और इसी नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्। चाँदनीसे शृंगारित रात्रिमें सुन्दर मुखवाली, गुण, रूप और प्रेमनिधिसे युक्त, अंग-अंगमें अनुपम सौन्दर्यकी छटासे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना॥ भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्तताके लिये यमुनापुलिनपर सम्पन्न गोपियोंने रसिकराज श्रीकृष्णके संग रासकी रचना वंशीवटकी सुरम्य भूमिपर विश्वकर्माजीने अनुपम की। वे गोपियाँ मयूर और कोयलके समान मृदुभाषिणी हैं, हंसके समान इनकी गति है। ऐसी कामसे विमोहित रासस्थलीका निर्माण कर दिया, इसे कामदेव और रितने मिलकर अतिशय सौन्दर्यसे परिपूर्ण कर दिया। रासका गोपियोंने स्वयं श्रीकृष्णको भी मोहित कर लिया। इस अलौकिक महारास-लीलाको गति प्रदान करते उचित समय जानकर श्रीकृष्णने अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानी और ब्रजबालाओंके संग इस दिव्य रासमण्डलमें हुए हित हरिवंशजीने सजीव चित्रण करते हुए लिखा प्रवेश किया। यह पुलिन यमुना की शीतल तरंगों और सुगन्धित वायुसे परिसेवित था। इस प्रकारके आनन्दप्रद आजु बन नीकौ रास बनायौ। वातावरणमें रासमण्डलके मध्यमें श्रीराधा-कृष्ण और पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट, मोहन बेनु बजायौ॥ उनके चारों ओर गोलाकार घेरेमें गोपियाँ खडी हो गयीं। कल कंकन-किंकिन नूपुर धुनि, सुनि खग मृग सचु पायौ। श्रीकृष्णका संकेत पाकर आकाशमें स्थित देवोंने जुबतिन मंडल मध्य स्याम घन, सारंग राग जमायौ॥ वाद्य-वादन प्रारम्भ कर दिया, वंशीधरकी वंशी मुखरित ताल मृदंग उपंग मुरज ढफ, मिलि रससिन्धु बढ़ायौ। हो उठी, श्रीराधारानीके पायलकी झंकार साकार हो विविध विसद वृषभानुनंदिनी, अंग सुढंग दिखायौ॥ उठी, गोपियाँ नृत्य करने लगीं। महारास-लीलाका अभिनय निपुन लटकि लट लोचन, भ्रकुटि अनंग नचायौ। शुभारम्भ हुआ। इस मनोहारी लीलाका सजीव वर्णन ततथेई-ताथेई धरित नवल गित, पित ब्रजराज रिझायौ॥ करते हुए सूरदासजीने लिखा है-परिरंभन चुंबन आलिंगन, उचित जुबति जन पायौ। मानो माई घन घन अंतर दामिनि। बरसत कुसुम मुदित नभ नायक, इन्द्र निसान बजायौ। घन दामिनि दामिनि घन अंतर, शोभित हरि ब्रज भामिनि॥ हित हरिवंश रसिक राधा पति, जस बितान जग छायौ॥ शरत्पूर्णिमाके अवसरपर रचाये रास और उसकी जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई जामिनि। सुन्दर सिस गुन रूप राग निधि, अंग अंग अभिरामिनि॥ रस-माधुरीका वर्णन करना वाणीका विषय नहीं, अपितु रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भईं गुन ग्रामिनि। भाव-समाधिमें लीन रहकर ही इसकी दिव्यता और रूप निधान स्याम सुन्दर घन, आनँद मन विस्नामिनि॥ माधुर्यका साक्षात्कार करना सम्भव है। खंजन-मीन, मयूर, हंस, पिक, भाइ भेद गज-गामिनि। कहा जाता है कि श्रीराधा-माधवके संग को गति गनै सूर मोहन संग, काम बिमोह्यौ कामिनि॥ ब्रजललनाओंकी इस माधुरी महारास-लीलाके दर्शनपर मोहित हो चन्द्रदेव छ: माहपर्यन्त आकाशके मध्यमें शरत्पृर्णिमाके पावन अवसरपर यमुना-पुलिनपर रचे महारासमें श्रीकृष्ण और गोपियाँ इस प्रकार सुशोभित हैं, स्थिर रहे। सूर्यदेवकी करुण पुकार सुन भगवान् श्रीकृष्ण मानों बादल (श्रीकृष्ण)-के मध्य दामिनि (गोपियाँ) हों इस लीलाका समापन करते हुए श्रीराधाको अपने संग और बिजरीके मध्य बादल हों। श्रीकृष्णके चारों ओर ले रासमंडलके मध्यसे अन्तर्धान हो गये। गोपियाँ भी गोपियाँ इतनी तीव्र गतिसे नृत्य कर रही हैं कि इन्हें देखकर उस महारासकी स्मृति मनमें सँजोये अपने-अपने गाँव ऐसा आभास होने लगा; जैसे—हर गोपीके संग एक-चली गयीं। इस प्रकार यह महारासलीला सम्पन्न हुई। एक कुष्ण हों। युमुनाका सुन्दर तट मनोहारिणी सुगन्धित, वंशीवट आज भी उसका साक्षी है। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

श्रीरामचरितमानसमें संग-प्रभाव संख्या १०] श्रीरामचरितमानसमें संग-प्रभाव (डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त, सम्पादक 'योगवाणी') गोस्वामी तुलसीदासद्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस है और वही नीचेकी ओर बहनेवाले जलके संगसे कीचडमें मानव-कर्तव्यबोधक महाकाव्य है। यद्यपि भगवान् श्रीरामके मिल जाती है। साधुके घरके तोता-मैना राम-राम उच्चारते हैं और असाधुके घरके तोता-मैना गालियाँ देते हैं। गोस्वामीजी शील, सौन्दर्य और शक्तिको उद्धासित करना गोस्वामीजीका अभीष्ट है, परंतु इन गुणोंके प्राकट्यके क्रममें उन्होंने परिवार, आगे कहते हैं कि कुसंगके कारण धुआँ कालिख कहलाता समाज और देशके प्रति मानव-कर्तव्यका निर्धारण भी किया है, वही धुआँ सुसंगसे सुन्दर स्याही होकर पुराण लिखनेके है।श्रीरामचरितमानसमें कर्तव्य-निर्धारणके क्रममें संग-प्रभावका काम आता है और वही धुआँ जल, अग्नि और पवनके वर्णन बहुत ही प्रभविष्णु है। गोस्वामीजी कहते हैं कि पदार्थ संगसे बादल होकर जगत्को जीवन देनेवाला बन जाता है। अपनी पूर्वावस्था या प्रथमावस्थामें शुद्ध होता है, परंतु संग-धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मिस सोई॥ प्रभावसे भूषित और दूषित होता है।शिशुरूपमें मानव भगवान्का सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥ रूप होता है। उसमें सम-दृष्टि होती है। प्रेम-रूप वही बालक (रा०च०मा० १।७।११-१२) संग-प्रभावसे सद्गुणों और दुर्गुणोंको प्राप्त करता है। देवर्षि सुसंग-कुसंगका जीवनपर व्यापक प्रभाव पड़ता है। नारदकी संगति प्राप्तकर बालक ध्रुव भगवान् विष्णुका प्रियभाजन श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्का सत्प्रेरक प्रवचन ध्यातव्य है, बना और उन्हींकी संगतिके प्रभावसे प्रह्लाद भगवान् विष्णुकी जिसमें उन्होंने तीनों गुणोंकी संगतिके प्रभावका वर्णन किया है। भगवान् कहते हैं कि सत्त्वगुणके संगसे देवयोनिमें एवं भक्तिका अधिकारी हुआ। सत्य ही है—'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्'। अर्थात् सत्संगति मनुष्यके लिये क्या रजोगुणके संगसे मनुष्ययोनिमें और तमोगुणके संगसे पशु नहीं कर सकती, परंतु नीचकी संगति व्यक्तिको अधोगामी आदि नीच योनियोंमें जन्म होता है। बना देती है। संसर्गसे ही गुण-दोष उत्पन्न होते हैं—'संसर्गजा पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजानाणान्। दोषगुणा भवन्ति'। स्वाति नक्षत्रकी बूँद केलेके पत्तेपर कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥ पड़नेपर 'कपूर', सीपमें पड़नेपर मोती और सर्पके मुखमें (गीता १३।२१) पड़नेपर 'विष' बन जाती है। संगतिके पूर्व वह शुद्धावस्थामें अर्थात् प्रकृतिमें स्थित ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न होती है।गोस्वामीजी कहते हैं— त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग। होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखिंह सुलच्छन लोग॥ कारण है। सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। (रा०च०मा० १।७ (क)) अर्थात् ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र— प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥ ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसारमें (गीता १४।१७) ब्रे और भले पदार्थ हो जाते हैं। विचारशील पुरुष ही इस सत्त्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुणसे बातको जान पाते हैं। इसके पूर्व ही गोस्वामीजीने इस बातको नि:सन्देह लोभ तथा तमोगुणसे प्रमाद एवं मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है। नि:सन्देह सुसंगके प्रभावसे इस उदाहरणके द्वारा स्पष्ट कर दिया है। व्यक्ति ऊर्ध्वगामी और कुसंगसे अधोगामी होता है। गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचिह मिलइ नीच जल संगा॥ साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥ गोस्वामीजी मानस (१।५७ (ख))-में कहते हैं-जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि। (रा०च०मा० १।७।९-१०) ऊर्ध्वगामी पवनके संगसे धूल आकाशपर चढ़ जाती बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥

जल भी द्रुधके साथ मिलकर दूधके समान भाव क्षय कर लेती हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—'**को न कुसंगति** बिकता है, परंतु खटाईका संग पाकर दूध फट जाता है *पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥*'(अयोध्याकाण्ड और स्वादहीन हो जाता है। २४।८) बादलका जल धूलसे मिलते ही गन्दा हो जाता है— दोहावलीमें भी गोस्वामीजीने संग-प्रभावको रेखांकित 'भूमि परत भा ढाबर पानी।जनु जीवहि माया लपटानी॥' किया है-(किष्किन्धाकाण्ड १४।६) संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ। कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग। कहिं संत किब कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ॥ बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥ (दोहावली ३४०) (रा०च०मा० ४।१५ (ख)) सन्तोंका संग मोक्षका और विषयी पुरुषोंका अतः दुष्टकी संगति दुःखदायी होती है और मनुष्यके संग संसारबन्धनमें पड़नेका मार्ग है। इस बातको सन्त, कवि, जीवन-लक्ष्यमें बाधा बनती है। एक प्रसंगमें भगवान् श्रीराम ज्ञानी और वेद-पुराणादि सद्ग्रन्थ सभी कहते हैं। विभीषणसे कहते हैं—'बरु भल बास नरक कर ताता। संग-प्रभावको स्पष्ट करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं दुष्ट संग जिन देइ बिधाता॥'(सुन्दरकाण्ड ४६।७) हे कि सुसंगसे मनुष्य अच्छा और कुसंगसे बुरा हो जाता है। तात! नरकमें रहना अच्छा है, परंतु विधाता दुष्टका संग जो लोहा नावमें लगनेसे सबको पार उतारनेवाला और कभी न दे। दुष्टोंका संग सदा दु:ख देनेवाला होता है। जैसे सितारमें लगनेसे मधुर संगीत सुनाकर सुख देनेवाला बन हरहाई गाय कपिला गायको अपने संगसे नष्ट कर देती जाता है, वही तलवार और तीरमें लगनेसे जीवोंका है। भगवान् श्रीरामजीने कुसंगके प्रभावको भरतजीको प्राणघातक हो जाता है। समझाते हुए यह बात कही—'तिन्ह कर संग सदा **दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥**'(उत्तरकाण्ड तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ। नाउ किंनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ॥ ३९।२) दुष्टोंके संगसे किसीके सुबुद्धि उत्पन्न हुई। काकभुशुण्डिजीने गरुड्जीसे कहा—'काहू सुमित कि (दोहावली ३५८) गोस्वामीजी कहते हैं कि बड़ोंकी संगतिसे मनुष्य खल सँग जामी।'(उत्तरकाण्ड ११२।४) गोस्वामीजीने बड़ा और छोटोंकी संगतिसे उसीका नाम छोटा हो जाता श्रीरामचरितमानसमें कुसंगके प्रभावको प्रसंगवश और भी है। धर्म, अर्थ और मोक्षके साथ रहनेसे 'काम' की भी उपदेशात्मक वर्णन किया है। गिनती चार पदार्थोंमें होती है। कुसंगमें पड़कर मनुष्य अपना सर्वनाश कर डालता है। उसका धन और स्वास्थ्य तो नष्ट होता ही है, साथ ही गुरु संगति गुरु होइ सो लघु संगति लघु नाम। वह कुमार्गपर चलकर आत्मोन्नतिसे हाथ धो बैठता है। चार पदारथ में गनैं नरक द्वारहू काम॥ उसके मानसमें अनीति और अशुभ प्रवृत्तियाँ जाग्रत् हो जाती (दोहावली ३५९) सुसंगमें रहकर मनुष्य मोक्षका अधिकारी बन जाता हैं। विचार-शक्तिके क्षीण हो जानेके कारण वह उचित है, वहीं कुसंग प्राप्तकर नरकका भागी बनता है। मनुष्यको मार्गसे भ्रष्ट होकर पतनोन्मुख हो जाता है। एक बार पतनके सत्संगतिमें रहना चाहिये। जीवन-लक्ष्यकी प्राप्तिमें सुसंगका गर्तमें गिरनेके बाद वह उससे उबर नहीं पाता। अत: व्यक्तिको विशेष महत्त्व है। अच्छी संगति मनुष्यको उच्चासन प्रदान कुसंगसे बचना चाहिये। गोस्वामीजीने सत्संगतिकी महिमाका भी गान किया करती है। गोस्वामीजीने कुसंगको भयानक बुरा रास्ता कहा है— है। उन्होंने सत्संगतिको आनन्द और कल्याणकी जड़ कहा **'कठिन कुसंग कुपंथ कराला'** (बालकाण्ड ३८।७) है—'सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब श्रीरामकथा-क्रममें कैकेयीको शुद्धमित दर्शाया गया है। वही साधन फूला॥' (बालकाण्ड ३।८) इसके पूर्व ही शुद्धमित कैकेयी मन्थराकी कुसंगति पाकर अपनी बुद्धिका गोस्वामीजीने सत्संगके परिणामकी महत्ता बतायी है—

• • •	नसमें संग-प्रभाव २५
मित कीरित गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥	मनुष्य-जीवन धन्य हो जाय। 'सत संगति दुर्लभ संसारा।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥	निमिष दंड भिर एकड बारा॥'(उत्तरकाण्ड १२३।६)
(रा०च०मा० १।३।५-६)	गोस्वामीजी कहते हैं कि सत्संगके बिना भगवत्-
जिसने जहाँ – कहीं भी जिस– किसी यत्नसे बुद्धि, कीर्ति,	कथाका श्रवण सम्भव नहीं, भगवत्कथा-श्रवण बिना मोह
सद्गति और ऐश्वर्य और भलाई पायी है, सो सब सत्संगका	नहीं भागता और मोहका नाश हुए बिना भगवान् श्रीरामजीके
प्रभाव है। वेदोंमें और लोकमें इनकी प्राप्तिका कोई दूसरा	चरणोंमें अचल प्रेम नहीं होता अर्थात् सत्संग
उपाय नहीं है।गोस्वामीजी मानस (१।३।९)-में कहते हैं	भगवत्साक्षात्कारका आधार है।
कि सत्संगतिसे दुष्ट भी सुधर जाते हैं, जैसे पारसके स्पर्शसे	बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
लोहा सुन्दर स्वर्ण बन जाता है।	मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥	(दोहावली १३२)
सुसंगके महत्त्वको रेखांकित करते हुए गोस्वामीजी	भगवान् शिवजी माता पार्वतीजीसे सत्संगकी महिमा
कहते हैं कि मलयपर्वतके संगसे काष्ठमात्र (चन्दन) वन्दनीय	बताते हुए कहते हैं कि हे पार्वती! सन्त-समागमके समान
हो जाता है, फिर कोई काठका विचार करता है ?	दूसरा कोई लाभ नहीं है, परंतु सत्संग हरिकृपाके बिना
प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।	सम्भव नहीं, ऐसा वेद और पुराण सभी कहते हैं।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग॥	गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
(रा०च०मा० १।१०(क))	बिनु हरि कृपा न होइ सो गाविंह बेद पुरान॥
यह सुसंगतिका प्रभाव ही है कि रेशमकी सिलाई	लंकिनीने हनुमान्जीसे सत्संगकी महिमाकी चर्चा
टाटपर भी अच्छी लगती है। ' <i>सिअनि सुहावनि टाट</i>	करते हुए कहा कि हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको
<i>पटोरे।</i> '(बालकाण्ड १४।१२)	तराजूके एक पलड़ेमें रखा जाय तो भी वे सब मिलकर
सत्संगति भगवान्की कृपासे प्राप्त होती है। सत्संगसे	दूसरे पलड़ेपर रखे हुए उस सुखके बराबर नहीं हो सकते,
सांसारिक विषय नष्ट हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामने सनकादिक	जो क्षणमात्रके लिये सत्संगसे होता है।
मुनियोंसे कहा— '<i>बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास</i>	तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
<i>होहिं भवभंगा॥</i> '(उत्तरकाण्ड ३३।८) भक्तिकी प्राप्ति भी	तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥
सत्संगसे सम्भव है। भक्ति समस्त सुखोंको देनेवाली है, परंतु	(रा०च०मा० ५।४)
बिना सत्संगके भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवान्	इस प्रकार गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें सुसंग
श्रीराम अयोध्यावासियोंसे कहते हैं—' <i>भिक्ति सुतंत्र सकल</i>	और कुसंगके प्रभावको अनेक सुसंगत उदाहरणोंसे परिपुष्ट
सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।' (उत्तरकाण्ड	किया है। सुसंग मनुष्यको ईश्वरका साक्षात्कार, परमशिवका
४५।५) भगवान् श्रीराम नगरवासियोंसे कहते हैं कि सत्संगति	दर्शन और मोक्षका अधिकारी बना देता है, वहीं कुसंग
ही संसृति (जन्म-मरणके चक्र)-का अन्त करती है—	मनुष्यको जीवन-पथसे भ्रष्टकर निरन्तर नरककी ओर ले
'सतसंगति संसृति कर अंता।' (उत्तरकाण्ड ४५।६)	जाता है। इसलिये गोस्वामीजीका यह कथन मनुष्यको दिशा
पुण्यसमूहके बिना सन्त नहीं मिलते। बिना सन्तके सत्संग	प्रदान करनेके साथ उसे सुसंगमें रहनेकी प्रेरणा प्रदान करता
प्राप्त नहीं होता। बिना सत्संगके विवेक नहीं होता। बिना	है। ' <i>संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।'</i> अत:
विवेकके ज्ञान नहीं मिलता और बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं	मनुष्यको सत्संगति प्राप्तकर अपने जीवनकी सार्थकता सिद्ध
मिलती। सन्तोंका संग मोक्षदायक है। काकभुशुण्डिजी	करनी चाहिये और गैर सज्जनोंकी संगतिमें रहकर परिवार,
गरुड़जीसे कहते हैं कि सत्संगति इस संसारमें दुर्लभ है।	समाज और देशोपकारक बन अपने सत्कर्तव्योंका निर्वाह
संसारमें पलभरकी एक बार सत्संगति प्राप्त हो जाय तो	करते हुए यशका भागी बनना चाहिये।
	>+

आयुर्वेदके अनुसार स्वास्थ्यका शत्रु है क्रोध (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़) सुश्रुतसंहिताके अनुसार जब ब्रह्माजीने सृष्टिकी चरकने क्रोधको विकृत पित्तका कर्म कहा है। रचना करनी प्रारम्भ की तो कैटभ नामक दैत्यने (चरकसंहिता, सूत्र० १२।११) अभिमानवश विघ्न पैदा करना शुरू कर दिया। तब क्रोधके अतिरिक्त भय, शोक, क्रोध, लोभ, मोह, तेज:पुंज ब्रह्माजीके क्रुद्ध होनेसे उनके मुखसे क्रोध शरीर मान, ईर्ष्या, मिथ्यादर्शन आदि भी मनके मिथ्या योगके धारण करके अतिदारुणरूप होकर गिरा। इस क्रोधरूपी लक्षण हैं। पुरुषने यमके समान बलवान् और विकराल गर्जन करते भयशोकक्रोधलोभमोहमानेर्घ्यामिथ्यादर्शनादि-हुए उस दैत्यका वध कर दिया। उसके उपरान्त वह र्मानसोमिथ्यायोगः॥ (चरकसंहिता, सूत्र० ११।३९) क्रोध विचित्र रूपसे बढ़ने लगा। उसको देखकर देवताओंमें मानस रोग क्रोध, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्घ्या आदिसे उत्पन्न होते हैं।

विषाद उत्पन्न हुआ। विषाद उत्पन्न करनेके कारण क्रोधको विष कहते हैं। सृष्टि-रचनाके उपरान्त ब्रह्माजीने क्रोधको स्थावर एवं जंगम प्राणियोंमें स्थित कर दिया। दैन्यमात्सर्यकामलोभप्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवन्ति॥ प्रजामिमामात्मयोनेर्ब्रह्मणः सुजतः किल। अकरोदसुरो विघ्नं कैटभो नाम दर्पितः॥ तस्य कुद्धस्य वै वक्त्राद्ब्रह्मणस्तेजसो निधेः। क्रोधो विग्रहवान् भूत्वा निपपातातिदारुणः॥ रूपमें वर्णित किया गया है-स तं ददाह गर्जन्तमन्तकाभं महाबलम्। ततोऽस्रं घातयित्वा तत्तेजोऽवर्धताद्भृतम्॥ ततो विषादो देवानामभवत्तं निरीक्ष्य वै।

विषादजननत्वाच्य विषमित्यभिधीयते॥ ततः सृष्ट्वा प्रजाः शेषं तदा तं क्रोधमीश्वरः। विन्यस्तवान् स भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च॥ (सुश्रुतसंहिता, कल्पस्थान ३।१८-२२) क्रोधकी उत्पत्तिका कारण सुश्रतसंहिताके टीकाकार डल्हणने क्रोधका अर्थ

पराभिद्रोहके लक्षणके रूपमें लिया है-**'क्रोधः पराभिद्रोहलक्षणः'** (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान १।२५ डल्हण) चरकसंहिताके अनुसार ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, मान, द्वेष वातादिदोषजन्य नहीं हैं, अपित ये मनके

र्डर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च

(१) रक्तिपत्त—रक्तिपत्तकी उत्पत्तिमें क्रोध, शोक, भय, आयास कारण हैं। क्रोधशोकभयायासविरुद्धान्नातपानलान् । कट्वम्ललवणक्षारतीक्ष्णोष्णातिविदाहिनः॥ नित्यमभ्यसतो दुष्टो रसः पित्तं प्रकोपयेत्। विदग्धं स्वगुणैः पित्तं विदहत्याशु शोणितम्॥

(सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र ४५।३-५) अर्थात् क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विरुद्ध भोजन, धूप, अग्नि, कटु, अम्ल, लवण, क्षार, तीक्ष्ण, उष्ण, अतिविदाहि द्रव्योंको नित्यप्रति सेवन करनेसे दुषित हुआ रस पित्तको प्रकुपित करता है। फिर विदग्ध हुआ पित्त

अपने तीक्ष्ण, उष्ण आदि गुणोंसे रक्तको शीघ्र ही विदग्ध

बना देता है। इससे रक्त ऊपर (मुख-नासा आदि) तथा

ततः प्रवर्तते रक्तमुर्ध्वं चाधो द्विधापि वा।

मानसास्तु क्रोधशोकभयहर्षविषादेर्घ्याभ्यसूया-

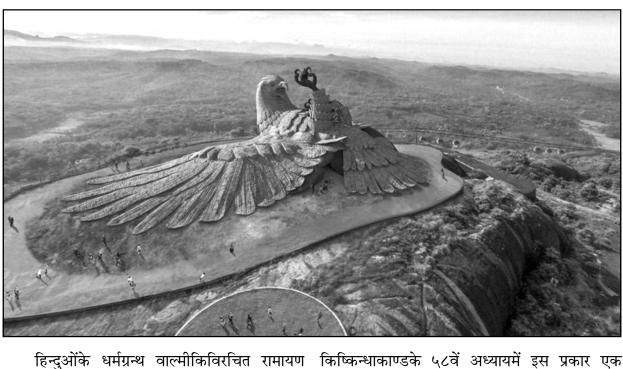
आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें क्रोधको विभिन्न रोगोंके कारणके

क्रोधसे होनेवाले रोग

(सुश्रुतसंहिता, सूत्र० १।२५)

विकार हैं। ये सभी बुद्धिके दोषसे उत्पन्न होते हैं। नीचेके मार्ग (गुदा-मूत्रमार्ग)-से अथवा दोनों मार्गीसे प्रवृत्त होता है। ये। मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः॥ (२)शिरोरोग—अतिक्रोध शिरोरोगकी उत्पत्तिका Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma ह MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

संख्या १०] आयुर्वेदके अनुसार स्व	त्रास्थ्यका शत्रु है क्रोध २७
***********************************	**************************************
सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्य-	अर्थात् जो व्यक्ति अम्लरस, उष्ण एवं तीक्ष्ण
क्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः ।	आहार-द्रव्योंका सेवन करता है, क्रोधी है, अग्नि
प्रजागरातिस्वप्नाम्बुशीतै-	और धूपका अधिक सेवन करता है तो उसे विशेषकर
रवश्यया मैथुनबाष्पधूमै:॥	पित्तदोषजन्य मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। ऐसे
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो	व्यक्तियोंमें प्यास, दाह, ज्वर, पसीना अधिक आना,
वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु।	मूर्च्छा, अतिसार, सिरमें चक्कर आना आदि लक्षण
(चरकसंहिता, चिकित्सास्थान २६।१०४–१०५)	होते हैं।
अर्थात् वेगोंको रोकनेसे, अजीर्णसे, रज (धूलि)-	(५) वातरक्त —वातरक्तके कारणोंमें क्रोधका भी
के सेवनसे, अधिक बोलनेसे, अधिक क्रोध करनेसे,	उल्लेख है।
ऋतुओंके विषम होनेसे, शिरमें वेदना होनेसे, रात्रिमें	विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
अधिक जगनेसे, दिनमें अधिक सोनेसे, शीतल जल	प्रायशः सुकुमाराणां मिष्टान्नसुखभोजिनाम्॥
पीनेसे, ओस लगनेसे, अधिक मैथुन करनेसे अधिक	अचङ्क्रमणशीलानां कुप्यते वातशोणितम्।
रोनेसे, अधिक धुआँ लगनेसे, जब सिरमें कफ आदि दोष	(चरकसंहिता, चिकित्साप्रकरण २९।७)
अधिक एकत्र हो जाते हैं, तो इन उपर्युक्त कारणोंसे	अर्थात् विरुद्ध भोजन (जैसे मूली और दूधका
शिर:प्रदेशमें वायु बढ़ जाती है और शिरोवेदनाकारक	सेवन, सममात्रामें घी और मधुका सेवन इत्यादि),
प्रतिश्याय रोग उत्पन्न होता है।	अधिक भोजन, क्रोध, दिनमें शयन, रात्रि-जागरण—इन
(३) अपस्मार —अपस्मारके विभिन्न कारणोंमें	सब कारणोंसे प्राय: जो सुकुमार व्यक्ति है तथा जो मधुर
से एक कारण क्रोध भी है।	आहारके सुखका अनुभव करनेवाले हैं और वे व्यायाम
चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा।	या घूमने-फिरनेसे दूर रहते हैं तो ऐसे व्यक्तियोंमें प्राय:
मनस्यभिहते नृणामपस्मारः प्रवर्तते॥	वात और रक्त एक साथ कुपित हो जाते हैं।
(चरकसंहिता, चिकित्सा० १०।५)	(६) अरोचक —अरोचक या भोजनके प्रति
अर्थात् चिन्ता, काम, भय, क्रोध, शोक और उद्वेग	अरुचिके कारणोंमें क्रोधको भी एक कारण माना
आदिके कारण मन दोषोंसे विशेषरूपसे दूषित हो जाता	जाता है।
है, तो अपस्मार रोगकी उत्पत्ति होती है।	वातादिभिः शोकभयातिलोभ-
तथा कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम्।	क्रोधैर्मनोघ्नाशनगन्धरूपैः ।
चेतस्यभिहते पुंसामपस्मारोऽभिजायते॥	अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः
(सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र ६१।६)	कषायवक्रश्च मतोऽनिलेन॥
अर्थात् काम, शोक, भय, उद्वेग, क्रोध आदिसे मनपर	(चरकसंहिता, चिकित्सा० २६।१२४)
बहुत आघात होनेपर पुरुषोंमें अपस्मार उत्पन्न होता है।	अर्थात् प्रकुपित वात, पित्त, कफ—इन दोषोंसे तथा
(४) पैत्तिक मदात्यय —पैत्तिक मदात्ययकी	शोक, भय, अधिक लोभ, क्रोध तथा मनका विनाश
उत्पत्तिमें भी क्रोध एक कारण होता है।	करनेवाले भोजन, गन्ध और रूपको देखनेसे अरोचक
तीक्ष्णोष्णं मद्यमम्लं च योऽतिमात्रं निषेवत।	रोगकी उत्पत्ति होती है।
अम्लोष्णतीक्ष्णभोजी च क्रोधनोऽग्न्यातपप्रिय:॥	इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार क्रोध विभिन्न
तस्योपजायते पित्ताद्विशेषेण मदात्ययः।	प्रकारके रोगोंका जन्मदाता है। अतः कल्याणकामी
(चरकसंहिता, चिकित्साप्रकरण २४।९२)	मनुष्यको क्रोधसे बचना चाहिये।



सम्बन्धित एक प्रसिद्ध स्थान और चिर स्मारकके रूपमें एक मन्दिर दक्षिण भारतके केरल राज्यमें स्थित है। जटायु एक पुराणप्रसिद्ध पक्षी है। भगवान् विष्णुसे

और व्यासविरचित महाभारतमें वर्णित जटायु नामक पक्षीके बारेमें आजके नवयुवकोंमेंसे अधिकांशको पूरी

जानकारी नहीं होती है। पक्षीयोनिमें जन्म लेकर हमारी

सभ्यता, संस्कृति और इतिहासमें स्थान पानेवाले जटायुसे

शुरू होकर ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप एवं अरुणसे होकर

वंशावली जटायुतक पहुँचती है। महाभारत आदिपर्व, अध्याय ६६ से यह पता

और जटायु नामक दो पुत्र जन्मे थे। यह जानकारी वाल्मीकिरामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग १४ में भी पायी

मिलता है कि अरुणको श्येनी नामक पक्षिणीसे सम्पाति

जाती है। तमिल भाषाके कम्ब नामक कविकृत 'कम्बरामायण' में अरुणकी पत्नीका नाम 'महाश्वेता' बताया गया है। विद्वानोंके मतमें महाश्वेता श्येनीका ही दुसरा नाम है।

बारेमें

वाल्मीकीय

जटायुके

कहानी मिलती है कि एक बार सम्पाति और जटायु सूर्यभगवानुको लक्ष्यकर उड गये। मध्याहनमें जटायु

िभाग ९४

सम्पातिको पराजितकर सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर गया। अपने भाईको बचानेके लिये सम्पातिने पंख फैला दिये। उससे जटायु तो बच गया, किंतु सूर्यका ताप पड़नेसे पंख जल जानेसे सम्पाति धरतीपर गिर पड़ा। थका हुआ

सम्पाति विन्ध्यपर्वतके ऊपर गिर पड़ा तो वहाँ तपस्या

कर रहे निशाकर (चन्द्रमा नामक मुनि)-ने उसे देखा।

सहानुभृतिजन्य करुणासे उन्होंने उसे बचा लिया। इसके बाद कभी भी सम्पाति एवं जटायु मिल न सके।

सम्पातिसे अलग हुआ जटायु दक्षिण भारतमें आया। दक्षिण केरलमें कोल्लम नामक जिलेके कोट्टारक्करा

तहसीलमें 'चटयमंगलम्' नामक एक प्रसिद्ध पुण्य स्थान है। इतिहाससे व्यक्त होता है कि इस स्थानका पुराना नाम 'जटायुमंगलम्' था। मलयालम भाषामें 'जटायुमंगलम्'

का अर्थ है 'जटायुकी जगह'। केरलके प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ॰ इलमकुलम कुंजन पिल्लैके मतमें यह स्थान राम-रावण-युद्धसे सम्बन्धित है। रामायण

संख्या १०] केरलस्थित जटायुर्त	ोर्थ—जटायुमंगलम्
**************************************	**************************************
भगवान् श्रीराम पत्नी सीता एवं भाई लक्ष्मणके	कारण प्रसिद्ध हुआ है। रावणके प्रहारसे पक्षिराज जटायु
साथ जब वन्य-जीवन व्यतीत कर रहे थे, तो उस समय,	जिस स्थानपर गिर पड़े, उस स्थानका नाम 'जटायुमंगलम्'
लंकाका राक्षस राजा रावण वेश बदलकर आकर	पड़ गया। जटायुका रावणको रोकनेका उद्देश्य उसे
सीताका अपहरण कर ले गया। राक्षसराजने सीतादेवीको	मारना नहीं था; बल्कि सीतादेवीकी रक्षा करना था, किंतु
अपने फूलोंसे बनाये गये विमानपर चढ़ाकर लंकाकी	रावण जटायुको मारकर 'जटायुमंगलम्' के ऊपरसे
ओर आकाशमार्गसे यात्रा शुरू की। यह यात्रा केरलके	तिमलनाडु होते हुए लंका पहुँच गया। रावणसे घायल
कोल्लम जिलेके आजके 'चटयमंगलम्' के ऊपरसे हो	होकर जटायु जिस विशाल चट्टानपर गिर पड़ा, उस
रही थी। रावणद्वारा सीताका अपहरण समझकर जटायुने	चट्टान और आसपासका नाम है 'जटायुमंगलम्'।
'जटायुमंगलम्' (चटयमंगलम्)-के ऊपर आकाशमें	आधुनिक परिष्करणकालमें 'जटायुमंगलम्' 'चटयमंगलम्'
जाकर रावणके विमानको रोक लिया। रावणने क्रुद्ध	बन गया।
होकर अपने चन्द्रहास नामक तलवारसे जटायुपर प्रहार	चट्टानपर पड़ा हुआ जटायु, रामभक्त होनेके कारण
किया। पंख टूटकर घायल होकर जटायु नीचे गिर पड़े।	रामनाम जपकर अपने स्वामीके आगमनकी प्रतीक्षा करता
वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, ५१वें अध्यायमें यह	रहा। खून बह रहा था, शरीर थका था और उसे बड़ी
बात वर्णित है।	प्यास भी लगी थी। वह अपनी चोंचसे चट्टानके ऊपर
रावणके अधीन पहुँच गयी देवी सीताकी तलाशमें	काटने लगा। फलस्वरूप चट्टानपर एक तालाब प्रकट
राम और लक्ष्मण चारों ओर घूमते फिरे। उसी खोजके	हुआ। यहाँके कुछ लोगोंके मतमें यह तालाब उसके पंख
क्रममें वे जटायुके पास आ पहुँचे, जो भयानक	फड़फड़ानेके कारण बना। इस तालाबमें हर समय पानी
रूपसे घायल था। उस समय मरणासन्न जटायु रामनाम	रहता है। इस विशाल चट्टानपर भगवान् श्रीरामचन्द्रके
जप रहे थे। जटायुने रामको रावणद्वारा सीताके	चरणोंकी छाप भी पड़ी हुई है। रामने जटायुके पास
अपहरणकी खबर दी। उसने अपने ऊपर पड़ी हुई	आकर, उन्हें सान्त्वना देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की।
राक्षसराजकी क्रूरताका चित्रण भी श्रीरामके सम्मुख	थोड़ी देर बाद जटायु मर गये। रामने उस भक्तका
पेश किया। जिस बातको अपने स्वामीको समझाना	अन्त्येष्टि-संस्कार किया। इस सन्दर्भमें चट्टानके ऊपर
था, उस बातको व्यक्त करनेके पश्चात् रामभक्त,	पड़े हुए रामके चरण-चिह्नको यहाँ आनेवाला भक्त
आत्मत्यागी, परोपकारी जटायुने इस सांसारिक जीवनका	पूजनीय मानता है।
विच्छेद कर लिया। राम एवं लक्ष्मणको बड़ा दु:ख	यहाँके पुराने पीढ़ीके कुछ लोगोंका मत है कि वन-
हुआ। रामने अपने भक्त जटायुको अपनी श्रद्धांजलि	यात्राके बीच श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ यहाँ
अर्पित की। फिर उसका भौतिक शरीर प्रकृतिको	पर्णकुटी बनाकर रहे थे। इस चट्टानके निचले भागमें
समर्पित किया। तमिलके कम्बरामायणमें बताया गया	सीतादेवीने रसोई बनायी थी। सीताके रसोईघरके रूपमें
है कि रामके शेष क्रियाद्वारा जटायुको मोक्ष मिला।	यहाँ चार दीवारोंके समान चट्टानसे घिरा एक कमरा-जैसा
'चटयमंगलम्' (जटायुमंगलम्)-का इतिहास इस	स्थान है। तीन चट्टानके ऊपर छतरीके समान एक लम्बी
इतिहाससे जोड़कर पढ़ना अच्छा है।	चट्टान पड़ी है। इस स्थानको सीताका रसोईघर कहते हैं।
'चटयमंगलम्' केरलकी राजधानी 'तिरुवनन्तपुरम्'	इस रसोईके भीतर छोटे-छोटे पत्थरके कुछ साधन-सामग्रियाँ
के निकटका एक स्थान है। कोट्टारक्करा नामक	भी हैं। लोगोंके विश्वासमें ये सब रसोई-उपकरण हैं।
तहसीलका यह सुरम्य स्थान, कोट्टारक्करासे 'तिरुवनन्तपुरम्'	करीब ३० वर्ष पहलेतक इस चट्टानके ऊपर सरकार और
की ओर जानेवाली मुख्य सड़कके किनारेपर स्थित है।	अन्य संस्थाओंकी ओरसे कोई परिष्करण-परिमार्जन नहीं
यह एक छोटा-सा गाँव है। यह गाँव रामभक्त जटायुके	हुआ था। तब यह प्रदेश मनोरम प्राकृतिक शोभा, इतिहास

और संस्कृतिके स्तम्भके रूपमें रहा, किंतु बादमें सरकार रहता है। चट्टान-मन्दिर (कलत्रिक्कोविल)-के समान और अधिकारियोंने इस पुराणप्रसिद्ध स्थानको धनार्जनका पूरे संसारमें दो-तीन मन्दिर ही होंगे। स्रोत समझकर तीर्थयात्राका केन्द्र बना दिया। आज स्वदेशसे तिरुवनन्तपुरम् केरलकी राजधानी है। यहाँसे ही नहीं, विदेशसे भी लोग यहाँ आने लगे हैं। 'चटयमंगलम्' ५० मीलकी दूरीपर है। तिरुवनन्तपुरम् 'चटयमंगलम्'की जटायु चट्टान साठ एकड़में फैली (त्रिवेन्द्रम)-का श्रीपद्मनाभ (महाविष्णु)-मन्दिर एक हुई एक विशाल चट्टान है। इस चट्टानके नीचेसे बहनेवाली पुण्यमय, प्राचीन और विख्यात मन्दिर है। यह मन्दिर छोटी-छोटी निदयाँ तीर्थयात्रियोंको आनन्द प्रदान करती तिरुविताँकूर राजवंशके अधीन था। यह राजवंश पूर्णरूपेण हैं। भक्तवत्सल श्रीरामकी मूर्तियाँ भी हैं। जटायुकी मूर्ति ६० महाविष्णुभक्त था। इस वंशके राजाओंका यह प्रमुख आराधना-केन्द्र था। इस राजवंशके राजाओंको 'पद्मनाभदास' फुट लम्बी और १५० फुट ऊँची है। जटायुका इस प्रकारका स्मारक-मन्दिर पूरे संसारमें दूसरा नहीं है। कहते हैं। वे अपनी सम्पत्तिका एक बड़ा हिस्सा अपने 'चटयमंगलम्' की जटायु चट्टान समुद्रस्तरसे १००० स्वामी पद्मनाभ (महाविष्ण्)-को समर्पित किया करते फीटकी ऊँचाईपर है। इसके चारों ओर नारियलके थे। इस मन्दिरके चारों ओर मिट्टीके नीचे गुफाएँ हैं, बगीचे हैं और रबड़ एवं चावलकी खेती होती है। मलयालम भाषामें इन्हें 'निलवरा' कहते हैं, जिनमें करोड़ों नीचेकी मुख्य सड़कसे चट्टानके शीर्षकी ओर जानेके रुपयेके सोना, चाँदी और हीरे-जैसे अमूल्य रत्न भरे पड़े लिये दो रास्ते हैं। इनमें एक आसान है, तो दूसरेपर हैं। तिरुवनन्तपुरम्का पद्मनाभ मन्दिर संसारके सबसे अधिक आना-जाना मुश्किल है। इसलिये दूसरा रास्ता साहसिक सम्पत्तिसम्पन्न मन्दिरोंमेंसे एक है। यहाँ भगवान् महाविष्णुकी यात्रियोंके लिये आनन्ददायक लगता है। चट्टानके नीचे आदिशेष (अनन्त) नामक नागके ऊपर शयनकी मुद्रामें मुख्य सड्कपर एक पुराना शिव-मन्दिर है। इसके एक लेटी हुई एक बड़ी मूर्ति है। इस मन्दिरमें दर्शनकर पुण्यप्राप्तिके कोनेपर राष्ट्रिपता महात्मा गांधीका एक स्मारक स्तूप भी लिये प्रतिदिन हजारों लोग यहाँ आते हैं। खड़ा है। जटायु चट्टानके दूसरे भागमें भगवान् अय्यप्पनका कोट्टारक्करा 'महागणपतिक्षेत्रम्' (गणपति-एक मन्दिर है। इसे यहाँके निवासी 'कुट्टी अय्यप्पन मन्दिर) 'चटयमंगलम्' के निकटका एक और प्रमुख क्षेत्रम्' (छोटा अय्यप्पा मन्दिर) कहते हैं। पुण्य स्थान है। यहाँ गणपतिभगवान्के साथ-साथ उनके पिता शिव और माता श्रीपार्वतीजीकी भी पूजा होती है। 'चटयमंगलम्' के आसपास हिन्दुओंके अनेक ऐतिहासिक एवं पुराणप्रसिद्ध स्थान और भी हैं; जिनमें यहाँसे संसार-प्रसिद्ध 'शबरीमला' मन्दिरके लिये रास्ता एक है, यहाँसे करीब १० मील दूरपर स्थित कोट्टक्कल शुरू होता है। दक्षिण भारतीयोंकी प्रधान आराधनामूर्ति कलत्रिक्कोविल गणपति मन्दिर। यह देवमन्दिर 'अय्यप्पन' का जन्मस्थान यहाँ है। वैसे उन्हें जहाँ पाला देशवासियोंके समान विदेशियोंको भी आकर्षित करता गया, वह 'पन्तलम राजमहल' भी निकट ही है। है। यहाँका मन्दिर चट्टानके भीतर है, एक साधारण यहाँके लोगोंका विश्वास यह है कि रामभक्त जटायुके चट्टानके भीतर एक कमरा है, जिसपर शिवलिंगका मन्दिरपर आकर दर्शन करना एवं रामनाम जपना, भक्तप्रिय पूजन होता है। कमरेके दूसरे भागमें गणपति एवं भगवान् श्रीरामका अनुग्रह पानेका एक रास्ता है। पार्वतीदेवीकी पूजा होती है। 'कलित्रक्कोविल' (चट्टान-'चटयमंगलम्' (जटायुमंगलम्) दक्षिण भारतीयोंको उत्तर मन्दिर) एक गुफा-मन्दिर माना जाता है। इसे भारतीयोंसे मिलानेका तीर्थ है। यह तीर्थ सहृदय भक्तको आदिमकालीन, गुफावासी मनुष्यनिर्मित माना जाता था। जटायुके अनुपम बलिदानसे, दक्षिणकी सभ्यताको संस्कृतिसे

स्मानात्वा sमूरानाङ्ग of Berver things: शिक्षण कुराया कुराया कुराया के मिल्रा है WITH LOVE BY Avinash/Sha

और सबसे ऊपर विश्वके पूरे रामभक्तोंको अपने परमादरणीय

इसलिये समय-समयपर केरल सरकार और भारत

संख्या १०] धर्मरथ (श्रीभगवतदास राघवदासजी महाराज) 'धर्म: प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो' (श्रीमद्भागवत-परहित—ये चार घोड़े हैं। बल हो, लेकिन बल महापुराण १।१।२) अर्थात् श्रीमद्भागवत-महापुराणमें विवेकयुक्त हो; तो एक तो बल, दूसरा विवेक, तीसरा वर्णित जो भी विषय-वस्तु है, वह धर्म ही है, किंतु दम यानी इन्द्रियनिग्रह तथा चौथा परहित, अब ये कौन-सा धर्म? तो श्रीवेदव्यासजी महाराज कहते हैं चारों घोड़े लगामसे लगे हुए हैं, इनकी रस्सियोंका कपटरहित धर्म; तो क्या धर्म भी कपटयुक्त होता है? वर्णन करते हैं-श्रीरामचरितमानसमें पुज्यपाद गोस्वामी बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥ श्रीतुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामजी तथा उनके सखा (रा०च०मा० ६।८०।६) रस्सियाँ हैं-क्षमा, कृपा तथा समता। अब यहाँ श्रीविभीषणजीके मध्य हुए संवादद्वारा धर्मके तात्त्विक स्वरूपका धर्मरथसम्बन्धी प्रसंगके माध्यमसे वर्णन किया ध्यान देनेयोग्य जो मुख्य बात है-वह है, घोड़े तो हैं है। जब श्रीरामजीसे श्रीविभीषणजीने कहा—'प्रभो! चार, परंतु लगामें हैं तीन। आप इस दुर्दान्त राक्षसराज रावणसे कैसे जीत सकते हैं? बलको रस्सी है क्षमा, विवेकको रस्सी है कृपा कारण कि आपके पास रथ तो है ही नहीं, कवच और तथा दमकी रस्सी है समता। परहितरूपी घोड़ेकी रस्सी पदत्राण भी नहीं हैं, फिर जीतकी आशा कैसे की नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि बल है तो उसका जाय?' ऐसा कहते हुए विभीषणजी व्याकुल हो गये; क्योंकि उन्हें तो रावणकी शक्तियोंका पुरा परिचय था। दुरुपयोग हो सकता है, विवेक है तो उसका भी मानसमें वर्णन आया है— कहीं-न-कहीं अनावश्यक कार्य हो सकता है, दम है तो उसका भी अन्त:भाव हृदयरूपी गुहामें अहंकारके रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥ रूपमें जाग्रत् हो सकता है, जो कि पतनका ही एक नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।। कारण बन सकता है। लेकिन परहित एक ऐसा (रा०च०मा० ६।८०।१, ३) साधन है, जो अपने-आपमें पूर्ण भगवत्प्राप्तिमें सहायक जब इस प्रकार विस्मयपूर्वक विभीषणजीने जिज्ञासा है, इसकी कभी भी इति नहीं हो सकती, न ही इसका की, तो आनन्दकन्द कौसलेन्द्र भगवान् श्रीरामजी महाराज कहीं भी कभी भी दुरुपयोग हो सकता है; मात्र यह अपनी परम करुणायुक्त वाणीमें कहना प्रारम्भ करते हैं। ठाकुरजी यहाँ धर्मरथके माध्यमसे धर्मके यथार्थ स्वरूपका एक नित्य-निरन्तर सत्पथपर चलनेकी ही प्रक्रिया है, जो कभी रुके नहीं, इसे बन्द करने, रोकनेकी कोई ही पूरा विस्तार कर देते हैं। जिस प्रकार रथमें रथके सभी अवयव—घोडा, आवश्यकता नहीं है। लगाम, सारथी आदि रथ चलने एवं चलानेके लिये अतः इसी कारण प्रभु श्रीरामजीने इसकी रस्सी यानी आवश्यक हैं, उसी प्रकार जीवनमें सुख-शान्ति एवं लगामकी आवश्यकता नहीं रखी। उन्होंने कहा है— शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये धर्ममय मार्गकी परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।। अति आवश्यकता है। ठाकुरजी सर्वप्रथम रथके पहियोंके (रा०च०मा० ३।३१।९) बारेमें बतलाते हैं। शौर्य, धैर्य, सत्य और शील क्रमश: परहित-दूसरेका हित, मनसे भी हो जाय तो प्रभु रथके पहिये, ध्वजा एवं पताका हैं। पुन: घोड़ोंका (परमात्मा) रीझ जाते हैं। इसीलिये मानो प्रभुने इसे वर्णन करते हुए कहते हैं। बल, विवेक, दम और रोकनेके लिये और लगामकी आवश्यकता नहीं समझी।

अब आते हैं धर्मपर, तो धर्म क्या है? गोस्वामी इसीको श्रीभागवतकारने 'धर्म: प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो के नामसे गाया है। तुलसीदासजी महाराजके अनुसार— पर हित सरिस धर्म निहं भाई। पर पीड़ा सम निहं अधमाई॥ कपटरहित धर्म तब होगा, जब व्यक्तिके आचरणमें ईश्वरके प्रति भक्तिभाव, वैराग्य, सन्तोष, दानशीलता, (रा०च०मा० ७।४१।१) धर्ममें भी कपटरहित धर्म! यहाँ एक बात और ध्यान सदसद्विवेकिनी बुद्धि, श्रेष्ठ ज्ञान, मनकी निर्मलता, यम, देनेयोग्य है, यहाँपर श्रीठाकुरजीने रथके प्राय: सभी नियम, गुरुजनों एवं सत्पुरुषोंके प्रति पूज्य भाव आदिका अवयव गिनाये और सबके विषयमें बताया, परंतु जो मुख्य समावेश होगा। धर्मरथके प्रकरणमें आगे प्रभु कहते हैं— अवयव है धुरी, जो पहियों एवं घोड़ोंका सम्बन्ध रथसे ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरित चर्म संतोष कृपाना॥ बनाये रहती है और उसीपर पूराका पूरा भार होता है दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥ तथा रथी एवं सारथी आसीन होते हैं, उस धुरीके बारेमें अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥ पूज्यपाद गोस्वामीजी प्रभुप्रेमपात्र श्रीभरतलालके माध्यमसे कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥ बतलाते हुए कहते हैं-धुरीको कौन धारण कर सकता सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।। है ? धुरीको तो वास्तवमें कोई कपटरहित धर्म-मर्मज्ञ कपटरहित धर्म और कपटयुक्त धर्मके मध्य बहुत प्रभुप्रेमी ही धारण कर सकता है, जैसे श्रीभरतलालजी ही पतली-सी पार्थक्य रेखा होती है, इसे एक अन्य उदाहरणसे समझा जा सकता है। मानसमें एक पात्र है महाराज। यथा-जौं न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को।। कालनेमि। उसे गोस्वामीजीने 'कालनेमि कलि कपट निधान्' के रूपमें वर्णित किया है। जब श्रीहनुमानुजी (रा०च०मा० २।२३३।१) धर्मकी धुरीको तो श्रीभरतलालजी-जैसे प्रभुप्रेमी महाराज लक्ष्मणजीके प्राण बचानेके लिये संजीवनी बूटी भक्त ही धारण कर सकते हैं, जिन्हें राजका बिलकुल ही लाने जा रहे थे, तो रावणने उसे उनका मार्ग रोकनेके लोभ नहीं था। उन्हें जो राजलक्ष्मी प्राप्त हुई थी, उसके लिये भेजा था। उस राक्षस कालनेमिने मायासे मुनिका बारेमें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज लिखते हैं— रूप बनाया और श्रीहनुमान्जीके मार्गमें राम-नामका जप करते हुए बैठ गया। हनुमान्जीने उसे साधु समझकर अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥ तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥ प्रणाम किया। उसने कहा—राम और रावणके मध्य महान् युद्ध चल रहा है, इसमें रामकी ही विजय होगी-(रा०च०मा० २।३२४।६-७) ऐसा ऐश्वर्य, ऐसा साम्राज्य; जिसका कोई कभी इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस प्रकार कालनेमि प्रकट भी वर्णन नहीं कर सकता और कहना नहीं होगा कि रूपमें रामजीकी प्रशंसा कर रहा था, परंतु उसका छद्म इतने वैभवशाली साम्राज्यको श्रीराम और भरतने धर्मकी उद्देश्य हनुमान्जीको रोककर उनका अहित करना था। रक्षाके लिये तुच्छ माना। आज हमारे जो भी धर्मरूपी इस प्रकार उसका यह कार्य कपटयुक्त धर्म है।

कृत्य कहे जाते हैं, उन्हें यदि सूक्ष्मतासे परखा जाय तो कहीं-न-कहीं उनमें भी लोभका लेश तो मिल ही

जायगा। आज जितने भी भोज, भण्डारे, कथा-आयोजन

या अन्य धार्मिक कृत्य जो देखनेमें तो परहितके कार्य

लगते हैं, उनमें अधिकांशत: कपटपूर्ण आचरण होता है,

अन्तमें यदि वास्तवमें मानव-जीवनका परम लाभ

प्राप्त करना चाहते हैं तो निश्छल मनसे मात्र प्रभुकी

प्रसन्नताके लिये ही परहित, धर्म या जो भी शुभ कर्म

हो, करते रहना चाहिये। करना चाहिये। इन्हीं शब्दोंके

साथ लेखनीको विराम। मंगलमस्तु इति शुभम्।

डायाराम। बाबाका बचपन सामान्य किसानके बेटे-जैसा ही बीता था। बाबा एकदम सीधे-साधे और दयाभावसे भरे

(श्रीरतिभाईजी पुरोहित)

गुजरातके सन्त श्रीडायाराम बाबा



संख्या १०]

संत-चरित

और माता यशोदाबेनके यहाँ दिनांक २५ दिसम्बर १८८९ ई०को पौष कृष्ण पक्षकी तृतीयाके दिन हुआ था। कहा जाता है कि माता यशोदाबेनके कन्हैया—लाला डायारामका भालप्रदेश एक सन्त-जैसा दिव्य आध्यात्मिक तेजसे भरा हुआ था। एक बार बालक डायारामके माता-पिताने जूनागढ़, रैवतक पर्वत, गिरनार और सोमनाथ महादेवजीकी दर्शन-यात्रा करने जानेवाली सन्त-मण्डलीको

तालुकाके बाँटवा शहरके पास कड़वा धारीदार पटेलोंकी

बस्तीवाला नानड़िया नामका एक छोटा-सा गाँव है। उस गाँवमें सन्तश्री डायाराम बाबाका जन्म परम भाग्यशाली जमींदार कडवा पाटीदार पटेल किसान श्रीराजाभाई चाडसणीया भण्डारा देकर दान-दक्षिणा दी। सन्तुष्ट सन्त-मण्डलीने बालक डायारामके भालप्रदेशमें दिव्य तेज देखकर आशीर्वाद देते हुए दम्पतीसे कहा—भगतजी! यह तुम्हारा बालक डाया डाया (सयाना) ही होगा और एक बडा सन्त या नेता बनेगा। वही छोटा बालक आगे जाकर सन्त श्रीडायाराम बाबाके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

राजाभाई पटेलके पास जमीन तो बहुत थी, किंतु

आजके जैसी वैज्ञानिक दृष्टिके अभावसे उत्पादन बहुत

स्वभावके थे। उन्होंने दो कक्षातक पढ़ाई की थी। पिता उन्हें खेतीके काममें लगाते तो थे, लेकिन सरल स्वभावके बाबा कुछ कर नहीं पाते थे। बाबा गीताके 'वासुदेव: सर्वमिति'को माननेवाले थे। वे प्राणीमात्रको दयाभावसे देखते थे। खेतमें पश्, पक्षी, गाय, भैंस आदि फसल खा जाय तो भी वे कुछ बोलते नहीं थे।

कम होता था। उनके दो बेटे थे। बड़ा हरिभाई और छोटा

बाबा कहते थे-हमारा कुछ भी नहीं है, सब कुछ ईश्वरका है। यह बाग-बगीचा ईश्वरका बनाया हुआ है। हम सब बगीचेको देखते हैं, बगीचेको बनानेवालेको नहीं देखते। हम सब बगीचेमें घूमने आये प्रवासीमात्र हैं। बाबा कहते थे-हमें ईश्वरने दिया है और हम

अन्यको दें। हमें भगवान्की सृष्टि—प्रकृतिको मानना

चाहिये। इससे हमारा कल्याण होगा, कुछ बिगड्नेवाला

नहीं है—'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात

इसलिये बाबाको पिताजी और बड़े भैया बिगड़ते रहते थे।

बाबा कहते थे-जरूरी साधन-सामग्री ही रखो. अधिक साधन-सामग्री सबको बाँट दो। ईश्वरपर भरोसा रखो। ईश्वर सबका भरण-पोषण करेंगे। हमें ईश्वर देंगे और हमारा रक्षण भी करेंगे—'योगक्षेमं वहाम्यहम्'। इस उपदेशका अनुभव इस लेखके लेखकने स्वयं

गच्छित।'

किया है। बाबा कम साधन-सामग्रीमें भी 'श्रीमद्भागवत-कथा'का सफल आयोजन करते थे। बाबा वचनसिद्ध सन्त-महात्मा थे और श्रीमद्भागवत-कथामें बहुत प्रीति रखते थे। बाबाकी शादी अपने ही गाँवके पटेल लक्ष्मण भाई

गरालाकी बेटी कंकुबेनके साथ हुई थी। उनके दो बेटे हुए। भीमजी भाई और राघवजी भाई। एकबार अकाल पड़ा। बड़े भैया हरिभाईने बाबाको फसलकी सिंचाई करनेके लिये खेतपर भेजा। बाबा खेतके कुएँपर गये।

खेतमें एक दिव्य चेतनावाले गिरनारी सन्त आये। बाबाने

सन्तको खिलाया-पिलाया और सेवा की। गिरनारी सन्तने

बाबा गात्राल-चांदीगढ गाँव होकर केवद्रा गाँव आये। प्रसन्न होकर कहा—'डाया! फसलकी सिंचाई मत कर, यहाँके भीड़भंजन महादेवमें बारह (१२)वर्षतक धूना मेहनत व्यर्थ जायगी, भजन कर। थोडे ही दिनोंमें वर्षा होगी।' ऐसा कहकर सन्त चले गये। जमाया। यहाँसे बाबाने अन्न, भोजन बन्दकर केवल बाबाके बडे भैया हरिभाई आये, बिगडे-अरे! लिंबडेका कडवा रस ही पीना शुरू किया, जो अन्ततक कामचोर! तुने फसल चौपट कर दी। काम न करना हो रहा। उन्होंने नाम-जप बढ़ानेके लिये मौनव्रत भी धारण तो यहाँसे चला जा। गिरनार जा और भक्ति कर। किया। बाबाके मनमें चोट लगी। मनमें भक्तिका रंग चढ बाबा अगल-बगलके गाँवके अपने भक्तों—सेवकोंके गया। उपदेश-आदेश दोनों मिल गये। बाबाने बारिशके घर रातको जाकर-जगाकर दर्शन-सत्संगका लाभ देते लिये कुछ खाये-पीये बिना लगातार प्रभ्-प्रार्थना शुरू कर थे। लोग बाबाके शरीरपर नागराज सर्पको चढ़ा हुआ देखते थे। बाबा अपने सभी भक्तों—सेवकोंको अभयदृष्टि दी। पाँच दिनमें बारिश हुई और चारों ओर जल-ही-जल हो गया। पानीके लिये तडपते किसान डायाको सन्त और हस्त-स्पर्शसे आशीर्वाद देते थे, उसी प्रकार नागराज डायाराम बाबाके नामसे जानने लगे। कुछ लोग कहते हैं सर्पको भी अभयदृष्टिकर हस्तस्पर्शसे छूते थे और कि वे गिरनारी सन्त नहीं थे, वरन् यह बाबाका स्वयं हटा देते थे। बाबाके आश्रममें नागराज सर्प बिना रोके-टोके घूमते-फिरते थे। किसीको भी भय न था। आज शिव-दर्शन था। बाबाने गाँव-परिवार छोड दिया। रैवतक पर्वत भी बाबाके आश्रममें सर्प इधर-उधर घूमा करते हैं गिरनार (भवनाथ जूनागढ़)-की गुहामें जा बैठे। वहाँसे और भक्त-सेवक लोग बाबाजीका ही दर्शन मानकर मानावदर शहरके पास भितडी गाँवके कालेश्वर महादेव वन्दन करते हैं। मन्दिरमें धुना (अग्निकृण्ड) बनाया। वहाँसे बाबाने अपने बाबा श्रीमद्भागवतकथा, तुलसी-विवाह बार-बार गाँवके पास टींबड़ी गाँवकी धार (निर्जन रास्ते)-में आसन करते रहते थे। कभी-कभार रामलीलाका मंचन भी किया और धूना बनाया। करते थे। कहा जाता है कि एकबार तुलसी-विवाहके उधर अपने गाँवसे सन्तस्वरूप बाबा डायाके चले समय दो अज्ञात स्वरूपवान् युवा साधु आये। बाबाने दोनों जानेसे भागदौड़ मच गयी। बड़े भैया हरिभाई बाबाके निज साधुओंको आभूषणादिसे अलंकृतकर विवाहकी शोभायात्रामें परिवारकी स्मृति दिलाकर मनाने आये। बाबा नहीं गये। बिठाया। शोभायात्राके बाद दोनों साधु अचानक अदुश्य हो गाँवके सब किसान लोग जबरन बाबाको अपने गाँव गये। बादमें सब लोगोंको लगा कि ये साधु स्वयं भगवान् ले आये। बाबाको शिव मन्दिरमें जप-तप करनेको कहा। नर-नारायण थे। गाँवके लोग बाबाको रातमें शिवमन्दिरमें बन्द कर देते थे, बाबाने सोंदरडा (केशाद) गाँवके रोडपर अपना आश्रम बनाकर यहीं आसन और धूना जमाया। ब्रह्मलीन लेकिन सुबहमें ताला बन्द, बाबा बाहर! सबलोग बाबाको यत्र-तत्र-सर्वत्र देखा करते थे। कहा जाता है कि बाबाकी होनेके समयतक यहीं रहे। यहाँ श्रीमद्भागवत, तुलसी-परीक्षा लेने मानावदर स्टेटके नवाबकी बेगम साहिबाने भी विवाह, रामलीला आदि धार्मिक प्रसंग करते रहे। बाबा 'जपात् सिद्धिः'में विश्वास रखते थे। उनके बाबाको मन्दिरमें ताला लगाकर बन्द किया था, लेकिन ताला बन्द रहा और बाबा बाहर थे। निवास-स्थानकी कुटीमेंसे दिन-रात, सुबह-शाम सतत बाबाने अपने घर-परिवारको वचन दिया था कि बिना रामनामकी ध्वनि सुनायी देती थी। देखे, खोले कोठी (अन्न भरनेका एक बडा बर्तन)-के बाबा जहाँ भी गये थे, वहाँ आज भी उनका आसन-धूना विद्यमान है। उन्होंने अपने सोंदरड़ा-स्थित आश्रममें नीचेसे अन्न लेते रहो, खाते रहो, खतम नहीं होगा। अब बाबाने अपने गाँवके मान-सम्मानके साथ 'साधु सम्वत् १९५३ भाद्रमास कृष्णपक्ष द्वितीया दिनांक २९ तो चलता भला 'की रीतिसे, सब भक्तों-सेवकोंको सत्संग-सितम्बर १९५८, सोमवारको अपना पांचभौतिक शरीर

सुखभोगकी इच्छाओंके नाशका उपाय संख्या १०] सुखभोगकी इच्छाओंके नाशका उपाय

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) पहले चित्त-शृद्धिके लिये सुख-भोगकी इच्छाओंके त्याग होता है और त्यागसे प्रेम पुष्ट होता है। अत:

त्यागकी बात कही गयी थी। अब विचार यह करना है साधकको चाहिये कि अपने प्रेमास्पद प्रभुके नाते

कि सुख-भोगकी इच्छा उत्पन्न कैसे होती है और

इसका त्याग कैसे हो सकता है? विचार करनेपर पता

लगता है कि इसके त्यागके दो उपाय हैं—एक विचार

और दूसरा प्रेम, क्योंकि अविचारके कारण शरीरमें

अहं भाव हो जानेसे और उससे सम्बन्ध रखनेवाले

पदार्थों में मेरापन हो जानेके कारण ही भोगेच्छाओंकी उत्पत्ति होती है। यह हरेक मनुष्यके अनुभवकी बात है कि जब

उसका किसीके प्रति क्षणिक प्रेम भी होता है, तब उस समय वह अनायास प्रसन्ततापूर्वक अपने प्रेमास्पदको सुख देनेकी भावनासे अपने सुखका त्याग कर देता है।

उस समय उपभोगकी स्मृति लुप्त हो जाती है और उसे अपने प्रेमास्पदको सुख देनेमें ही रस मिलता है। उस रसके सामने उपभोगका रस फीका पड़ जाता है। जब

साधारण प्रेमकी यह बात है, तब जो प्रेमके तत्त्वको जाननेवाले हैं, हरेक प्राणीके साथ सदा ही प्रेम करते हैं, प्रेम ही जिनका स्वभाव है, ऐसे परम प्रेमास्पद प्रभुके प्रेमकी जिसको लालसा है, उस प्रेमीकी सब प्रकारके

सुखभोग-सम्बन्धी इच्छाओंका त्याग अपने-आप बिना प्रयत्नके हो जाय, इसमें आश्चर्य ही क्या है! इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रेमसे भी इच्छाओंका त्याग अनायास ही

जितनी भी उपभोगकी इच्छाएँ हैं, वे सब शरीरमें

हो सकता है। अहंभाव हो जानेके कारण उत्पन्न होती हैं। शरीरके

साथ एकता न होनेपर किसीके मनमें उपभोगकी इच्छा नहीं होती। अतः विचारके द्वारा जब मनुष्य यह समझ लेता है कि 'शरीर मैं नहीं हूँ' तब भोगेच्छाओंका त्याग अपने-आप हो जाता है और

इच्छाओंका सर्वथा अभाव हो जाना ही अन्त:करणकी शुद्धि है।

त्याग और प्रेमका घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रेमसे

हरेक प्राणीको सुख पहुँचानेकी भावना करता रहे। भावनासे मनुष्यका अन्त:करण बहुत ही

शीघ्र शुद्ध होता है और विशुद्ध अन्त:करणमें प्रेमास्पद प्रभुके प्रेमकी लालसा अपने-आप प्रकट हो जाती है।

साधकको चाहिये कि प्राप्त शक्तिके द्वारा प्रभुके नाते दूसरोंके अधिकारकी पूर्ति करता रहे और किसीपर अपना कोई अधिकार न समझे। शरीर-निर्वाहके लिये

आवश्यक पदार्थोंको भी दूसरोंकी प्रसन्नताके लिये, उनके अधिकारको सुरक्षित रखनेके लिये ही स्वीकार

करे, जो कि लेनेके रूपमें भी देना ही है; क्योंकि इस शरीरसे जिनके अधिकारकी पूर्ति होती है, उनका ही तो इसपर अधिकार है। जब साधक शरीर और

प्राप्त वस्तु तथा सब प्रकारकी शक्तियोंको अपने प्रभुकी मानता है, उनपर अपना कोई अधिकार नहीं मानता, उनसे किसी प्रकारके उपभोगकी आशा भी नहीं करता, तब उसके द्वारा जो कुछ होता है, वह त्याग

और प्रेम ही है, जो अन्त:करणकी शुद्धिका मुख्य साधन है।

आवश्यक है।

प्रेमका अधिकारी प्रेमी ही होता है, भोगी नहीं;

क्योंकि उपभोगसे प्रेममें शिथिलता आ जाती है। यदि गम्भीरतासे विचार किया जाय तो यह समझमें आ जाता है कि जीव और ईश्वर दोनों ही प्रेमी हैं।

इनमेंसे कोई भी भोगी नहीं है। जीवमें जो भोगबुद्धि जाग्रत् होती है, वह केवल देहके सम्बन्धसे होती है,

स्वाभाविक नहीं है; और देहका सम्बन्ध अविचारसिद्ध है, यह सभी दर्शनकार मानते हैं। अत: प्रेमके लिये विवेकपूर्वक देहसे असंग होकर चाहरहित होना परम

ईश्वर और जीव दोनों प्रेमी होते हुए भी दोनोंके प्रेममें बड़ा अन्तर होता है; क्योंकि ईश्वर चाहसे

रहित और समर्थ भी है। जीव चाहसे रहित तो है, जीवकी इस ईमानदारीको अर्थात् उसके नाममात्रके त्यागको भी ईश्वर अपने सहज कृपालु स्वभावसे परंतु समर्थ नहीं है। जीवमें प्रेमकी भूख है, इसलिये

जीव जो भोगोंका और उनकी चाहका त्याग करता है, उसमें कोई महत्त्वकी बात नहीं है; क्योंकि भोगोंको भोगनेका परिणाम तो रोग है। उससे बचनेके लिये उनका त्याग अनिवार्य है। इसके सिवा जीवको

है, अत: उसमें किसी प्रकारकी चाह नहीं होती।

वह प्रेम करता है और ईश्वर माधुर्यभावसे प्रेरित

होकर जीवको प्रेम प्रदान करनेके लिये उससे प्रेम

ईश्वरकी ही दी हुई है। अतः उनका त्याग करना भी कोई बड़ी भारी उदारता नहीं है। इसी प्रकार सद्गतिके लालचका त्याग कर देना भी कोई महत्त्वकी बात नहीं है; क्योंकि सब प्रकारके भोगोंकी चाहसे रहित होनेपर दुर्गति तो होती ही नहीं। इतनेपर भी

जो कुछ वस्तु और कर्मशक्ति प्राप्त है, वह भी

विज्ञानकी कसौटीपर गोदुग्ध और गोघृत गो-चिन्तन—

गौमाताप्रदत्त पंचगव्य—दूध, दही, घी, गोमूत्र और गोबर अनेक प्रकारके रोगोंके उपचारमें प्रयोग होता है।

महर्षि चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि, वाग्भट तथा अन्य अनेकों आयुर्वेदाचार्योंद्वारा रचित चिकित्साशास्त्रके ग्रन्थोंमें

पुरातनकालके महर्षियोंका रोगोपचारसम्बन्धी पंचगव्यका प्रयोग देखने एवं पढ़नेको मिलता है।

गौमाताका दूध अमृतके समान गुणकारी तथा अत्यन्त सुपाच्य होता है, इसके दूधमें ३.५ से ४

प्रतिशततक चिकनाई होती है, जबकि भैंसके दूधमें ५.५से ६ प्रतिशततक चिकनाई होती है। विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (W.H.O.)-के अनुसार मानव-शरीरके

हितमें ४.५से ५ प्रतिशततक वसा पर्याप्त है। इससे अधिक वसा मानवके लिये हानिकारक है। भैंसके दूधमें चिकनाईकी मात्रा अधिक होती है, जो व्यक्तिकी

करता है। ईश्वर सब प्रकारसे पूर्ण और सर्वथा असंग जीवसे प्रेम करनेकी कामनाका अपनेमें आरोप कर लेते हैं; क्योंकि प्रेम ईश्वरका स्वभाव है और जीवकी माँग है। अत: जो उनसे प्रेम करता है, ईश्वर उसका अपनेको ऋणी मानते हैं। सचमुच एकमात्र ईश्वर ही

जीवकी बड़ी भारी उदारता मानते हैं और जीवपर

ऐसा प्रेम करते हैं कि स्वयं पूर्णकाम होनेपर भी

भाग ९४

प्रेमी हैं; क्योंकि प्रेम प्रदान करनेकी सामर्थ्य अन्य किसीमें नहीं है। भोगी मनुष्य प्रेमका अधिकारी नहीं होता। वह तो सेवाका अधिकारी है। प्रेमका अधिकारी तो चाहसे

रहित ही होता है, क्योंकि चाहयुक्त व्यक्तिके साथ किया हुआ प्रेम स्थायी नहीं होता। वह उस प्रेमको भी अपनी चाह-पूर्तिका साधन मान लेता है। अत: प्रेमका आदर नहीं कर पाता।

(श्रीबरजोरसिंहजी)

हृदयरोग होनेकी घबराहटमें देशी घी, जिसमें लोगोंने

गायके घीको भी बन्द कर दिया और वनस्पति घी आदिका उपयोग करने लगे। लेकिन इसमें पाया जानेवाला

फैट ट्रांस फैट होता है, जो अधिक हानिकर है। ट्रांस

फैट ४२ डिग्री सेंटीग्रेडपर पिघलता है, जबिक हमारा

शरीर ३६ डिग्री सेंटीग्रेड तापमानतक पिघलनेवाली

वस्तुएँ ही पचा सकता है। इस कारणसे जो ट्रांस फैट होता है, वह शरीरमें बिना पचे पड़ा रहकर कोलेस्ट्रॉल

ही बढाता है। पाश्चात्य चिकित्सकोंद्वारा सभीका ध्यान दुध-

घीसे हटाकर विटामिनपर केन्द्रित करनेके लिये जोर-शोरसे सब्जियों एवं अण्डे आदिका प्रचार किया गया,

जबिक गोदुग्धमें विटामिन बहुतायतसे पाये जाते हैं। गोमाताका दूध हमारे शरीरको निरोगी रखनेवाला तथा

नाड़ियोंमें जम जाती है। भैंसके दूधमें कोलेस्ट्रॉल होता बुद्धिवर्धक है। महाभारतमें यक्षका प्रश्न है—'अमृत क्या है, जो दिलके दौरे (हार्टअटैक)-का कारण बनता है। है ?' उत्तरमें युधिष्ठिर कहते हैं—'गायका दूध अमृत

संख्या १०] विज्ञानकी कसौटीप	र गोदुग्ध और गोघृत ३७
*************************************	**************************************
है।' पुरातनकालसे देवताओं, ऋषियों, मुनियों, योगियों,	उत्पन्न होती है। इसीलिये हमारे पूर्वजोंने यज्ञ-हवन
तपस्वियोंका प्रधान आहार गोदुग्ध ही रहा है।	करनेको महत्त्व दिया और सामाजिक एवं धार्मिक
गोमाताके दूधमें स्वर्णिम आभावाला कैरोटिन तत्त्व	कार्योंमें यज्ञ-हवनका होना अनिवार्य कर दिया। देवी-
(पदार्थ) होता है, जो शरीरमें स्वर्णधातुकी पूर्ति करता	देवताओंकी पूजामें एकमात्र गौमाताके घी-दूधका ही
है। गोदुग्धका पीलापन या स्वर्ण-जैसी आभा उसमें	प्रयोग होता है, अन्य किसी भी प्राणीका घी-दूध प्रयोग
निहित स्वर्णतत्त्व ही है। स्वर्ण हृदयरोगके निदानके लिये	नहीं किया जाता। गौमाताके घीमें कैंसरसे लड़नेके गुण
अति आवश्यक तत्त्व है। गोमाताका दूध और गोमाताका	मौजूद हैं। अन्य किसी भी प्राणीके घीमें यह क्षमता नहीं
घी हृदयकी शिकायतोंके लिये या हृदयमें आयी कमीके	है। गौमाताका दही और मट्ठा (छाछ) उदर (पेट)-
लिये सुरक्षा-कवच है।	के लिये अमृत है। गायका मट्ठा वात, पित्त, कफ तीनों
आयुर्वेदके अनुसार हृदय–रोग कई कारणोंसे होता	दोषोंका शमन करनेवाला, भूखको बढ़ानेवाला, कब्जनाशक
है; जैसे बिलकुल परिश्रम न करना, मशीनकी तरह	तथा बवासीरको जड़से खत्म करनेवाला है। मट्ठा
अत्यधिक परिश्रम करना, अधिक मात्रामें तीक्ष्ण भोजन	अपनी खटाससे वातका, मधुरतासे पित्तका और कषैलेपनसे
करना, शक्तिसे अधिक दौड़ना तथा भय, चिन्ता, त्रास-	कफका शमन करता है। इसे त्रिदोषनाशक माना गया
विरेचन, अधिक वमन, अधिक मद्यपान एवं धूम्रपान	है। मट्ठा मनुष्योंके लिये हितकारी-गुणकारी अमृतके
करना, हृदयमें चोट लगना, हर समय मानसिक तनावमें	समान है।
रहना। इसके अतिरिक्त जब हमारे शरीरके भीतर	यहाँपर मैं एक बार फिर कहना चाहूँगा कि
अत्यधिक दूषित पदार्थींका संचय हो जाता है, तब	गोमाताके दूध और घीके सेवनसे शरीरकी रोग-
उसके द्वारा हमारा हृदय आक्रान्त हो जाता है और हम	प्रतिरोधक क्षमता आश्चर्यजनक रूपसे बढ़ जाती है और
हृदयरोगी बन जाते हैं। यदि हम हृदयरोग होनेके	हृदयाघातकी सम्भावना कम हो जाती है। इसलिये आप
कारणोंसे अपनेको बचाते हैं और स्वर्णिम आभावाले	यदि रख सकते हों तो एक गोमाताको अपने घरमें
कैरोटिन तत्त्वका सेवन करते हैं तो हम अपने-आपका	अवश्य रखें। गोमाताकी सेवासे सारे पुण्य अर्जित करें।
हृदयरोगसे बचाव कर सकते हैं। ध्यान रहे कि केवल	गोसेवाके माहात्म्यकी चर्चा करते हुए कहा गया है—
गोघृतमें ही यह पीले रंगका कैरोटीन (स्वर्णतत्त्व) पाया	तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
जाता है, अन्य घृतोंमें नहीं पाया जाता है। खोज करनेमें	सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यह बात सामने आयी है कि मुख, फेफड़े, मूत्राशय	यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
आदि अनेक अंगोंमें कैंसर रोगका प्रमुख कारण शरीरमें	यत्पुण्यं प्राप्यते सद्यः केवलं धेनुसेवया॥
कैरोटीन तत्त्वकी कमीका पाया जाना है। कैरोटीन तत्त्व	अर्थात् जो पुण्य तीर्थोंके स्नानमें है, जो पुण्य
शरीरमें पहुँचकर विटामिन ए तैयार करता है। नेत्ररोगोंमें	ब्राह्मणोंको भोजन करानेमें है, जो पुण्य व्रतोपवास तथा
तो यह अत्यन्त लाभकारी है। यह कैरोटीन बुद्धि,	तपस्याद्वारा प्राप्त होता है, जो पुण्य श्रेष्ठ दान देनेमें है
सौन्दर्य, कान्ति एवं स्मृतिको बढ़ाता है। कैरोटीन ताजे	और जो पुण्य देवताओंकी अर्चनामें है, वह पुण्य तो
गोघृतमें ही रहता है, जैसे-जैसे गोघृत पुराना होता जाता	केवल गौमाताकी सेवासे ही तुरन्त प्राप्त हो जाता है।
है, वैसे-वैसे उसका कैरोटीन समाप्त होता जाता है।	होमधेनु गोमाताकी जो पूजा करता है, वह इस
वैज्ञानिकोंकी मान्यता है कि गायके १० ग्राम घीकी	लोकमें अभ्युदय तो प्राप्त करता ही है, मरनेके बाद भी
यज्ञमें आहुति देनेसे लगभग १ टनसे अधिक ऑक्सीजन	उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। (तैत्तिरीय ब्राह्मण)
	D++

साधनोपयोगी पत्र (१) समझमें आ ही जानी चाहिये।

भगवानुकी नासमझी नहीं, उनकी उदारता और करुणा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र

मिला। आपके प्रश्नोंका संक्षिप्त उत्तर इस प्रकार है—

(१) अजामिल जातिके ब्राह्मण थे। सदाचारी थे। परंतु एक शूद्रजातीय कुलटा स्त्रीमें आसक्त होकर

उसीके साथ रहने लगे। उन्होंने अपने छोटे पुत्रका नाम नारायण रखा था। मृत्युके समय यमदूतोंके भयसे उन्होंने अपने पुत्रको ही 'नारायण' 'नारायण' कहकर पुकारा

था। परंतु किसी भी निमित्तसे यदि भगवानुका नाम जीवनके अन्तिम श्वासमें मुखसे निकल जाय, तो

भगवान् उसका निश्चय ही कल्याण करते हैं। नामके इस सहज गुणका और अपने विरदका निबाह करनेके लिये भगवान्ने 'नारायण' नामका उच्चारण होते ही अपने दूत उनके पास भेज दिये और उन्होंने यमदूतोंके

हाथसे अजामिलको बचा लिया। इसको भगवान्की नासमझी बतलाना, अपनी 'नासमझी'का परिचय देना है। इसमें तो आपको वस्तुत: भगवानुके स्वभावकी

सहज उदारता और अकारण करुणाके दर्शन होने चाहिये। (२) गीताका पाठ तथा उत्तम ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेवाला भी यदि क्रोध न छोड़ सके, तो यह उसकी

दुर्बलता ही है। क्रोध-त्यागका उपाय है—निज दोष-दर्शन और सर्वत्र भगवद्दर्शन। प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक

जीव श्रीभगवान्का स्वरूप है, ऐसा समझने-देखनेसे विरोधभाव शान्त हो जाता है। (३) श्रीहनुमान्जीने जब मशक-समान रूप धारण

किया, तब अँगूठी कहाँ रही ? वास्तवमें श्रीहनुमान्जीका महत्त्व न जाननेसे ही मनमें इस प्रकारकी कुशंका उत्पन्न

होती है। जो श्रीहनुमान्जी अपने पर्वताकार शरीरको

मच्छरके समान अत्यन्त छोटा बना सकते हैं, वे उस

अँगुठीको भी इतनी छोटी बना सकते हैं कि मच्छर

चरणोंमें बार-बार नमस्कार।

ईश्वर महादेव हैं, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं, उन गुरुके

अज्ञानतिमिरान्थस्य

ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महान्

िभाग ९४

(४) स्त्री-जातिको 'अबला' उनका तिरस्कार

करनेके लिये नहीं कहा गया है। वह प्रेममयी पत्नी है

और स्नेहमयी माँ है। अपने पति-पुत्रोंके सामने कभी

बलका प्रदर्शन नहीं करती। निरन्तर उनकी मंगलकामना करती हुई प्रेममयी और स्नेहमयी बनी रहती है। विश्व-

विध्वंसकारी क्रोधमें भरे अमित बलवीर्य-सम्पन्न भगवान

नृसिंह शिशु प्रह्लादके सामने आते ही सारे बलको

भूलकर तथा क्रोधरहित होकर उसे गोदमें ले लिये और

चाटने लगे। रणरंगिणी दुष्टदलनकारिणी भगवती दुर्गा

अपने स्वामी शंकरके सामने सदा विनम्र रहकर अबला-

सी बनी रहती हैं। इसमें बलका अभाव नहीं है, बलके

(२)

सद्गुरुका महत्त्व

कुपापत्र मिला। आपका लिखना सर्वथा सत्य है।

अज्ञानान्धकारसे हटाकर भगवत्स्वरूपके पुण्यप्रकाशमें

पहुँचा देनेवाले गुरुका महत्त्व भगवान्से भी अधिक माना जाता है। पता नहीं, सद्गुरुकी कृपासे कितने प्राणी

दुराचारका त्याग करके नरकानलसे बच गये हैं और बच

रहे हैं। गुरु भगवत्स्वरूप ही हैं। ऐसे सद्गुरु बड़े ही

पुण्यबल और भगवान्की कृपासे प्राप्त होते हैं। सद्गुरुके

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका

प्रदर्शनका अभाव है। शेष भगवत्कुपा।

चरणोंमें नमस्कार। ज्ञानांजनकी सलाईसे अज्ञानरूपी तमसे

अन्धेकी आँखोंको खोल देनेवाले गुरुके चरणोंमें नमस्कार।' होत्रींगरी भां उत्तर शहर प्राक्ष प्रदूष्ट्र प्राक्ष प्रदूष्ट्र में स्वर्ध प्रकृति क्षा कार्य के प्रकृति का स्वर्ध प्रकृति का स्वर्य का स्वर्ध प्रकृति का स्वर्य का स्वर्ध प्रत

संख्या १०] क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	
	भगवान्की दिव्य-ज्योतिके दर्शन कराना, भगवान्की
पाप-तापके प्रचण्ड प्रवाहमें बहते हुए प्राणीकी रक्षाके	आरती दिखाना और खास करके तरुणी स्त्रियोंको ही
लिये स्वयं गुरुदेव ही सुदृढ़ जहाज और वे ही उसके	इन सब भगवत्कृपाओंकी अधिकारिणी बताना—मेरी
कर्णधार हैं। इसलिये गुरुका विरोध करना साधारण पाप	समझसे तो धोखामात्र है। मुझे ऐसे कई प्रसंगोंका पता
ही नहीं, सीधा नरकको निमन्त्रण है। पर वस्तुत: यह	है, जहाँ लोग ऐसे चमत्कारोंके नामपर बुरी तरह ठगे
महिमा शिष्यके अज्ञान एवं पाप-तापादिका हरण करनेवाले	गये हैं। आपको सावधान होना चाहिये तथा अपने
सद्गुरुकी ही है, कामिनी-कांचनके लोभी बाजारी	यहाँके लोगोंको खास करके स्त्रियोंको सावधान कर
गुरुओंकी नहीं। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—	देना चाहिये। नहीं तो वे बुरी तरह चमत्कारके चंगुलमें
ु गुरु सिष बधिर अंध कर लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥	फँसकर अपने धन-धर्मका नाश कर सकती हैं।
ु हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घर नरक महुँ परई॥	वे महात्मा पूजा करवाते हैं, धन भी प्रकारान्तरसे
आजकल चारों ओर गुरुओंकी भरमार है, कौन	खूब लेते हैं। लोग उन्हें भगवान् मानते हैं—यह सब भी
सद्गुरु हैं, कौन नकली हैं—इसका पता लगना सहज	खतरेकी चीजें हैं।
नहीं है। इस स्थितिमें किसी अन्धेके हाथमें लकड़ी	साधु-सेवा करना तथा साधुसंगसे लाभ उठाकर
पकड़ा देनेवाले अन्धेकी जो दुर्दशा होती है, वही इन	भगवान्के भजनमें प्रवृत्त होना तो मनुष्यमात्रके लिये
गुरु-शिष्योंकी होती है। अतएव वर्तमान समयमें गुरुकरण	आवश्यक कर्तव्य है, पर जहाँ स्त्री तथा शरीर-पूजाकी
बहुत ही जोखिमकी चीज है। भगवान् सहज जगद्गुरु	माँग हो, वहाँ सावधान हो जाना चाहिये, चाहे वहाँ
हैं, उन्हींका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। आज जिस	भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन करानेकी ही बात कही जाती
प्रकारका दम्भ-छल-कपट चल रहा है, चारों ओर जो	हो। सन्ध्या-वन्दन प्रतिदिन कम-से-कम दोनों समय
अध:पतनकी धूम मची है, इसमें किसीको गुरु स्वीकार	करना चाहिये। कम-से-कम एक माला गायत्रीका जप
करके उसे अपना सर्वस्व मानना, उसकी एक-एक	द्विजमात्रको करना चाहिये। जो महात्मा सन्ध्या-गायत्रीके
बातको ईश्वर-वाक्य मानकर स्वीकार करना और उसे	त्याग, सदाचारके त्याग तथा शास्त्रोंको न माननेका
तन–मन–धन सौंप देना बुद्धिमानीका काम नहीं है। इसमें	आदेश देते हैं, उनसे भी सावधान रहना चाहिये। फिर
बहुत अधिक धाखेकी सम्भावना है। खास करके,	जो असत्य तथा छलका उपदेश देते हों, सदाचारके
स्त्रियोंको तो इससे अवश्य ही बचना चाहिये। शेष प्रभुकृपा।	त्यागको तथा यथेच्छाचारको ही प्रेम बताते हों, भगवान्के
(३)	नामके बदले अपने नाम तथा भगवान्के स्वरूपके बदले
चमत्कारसे सावधान रहिये	अपने स्वरूपका ध्यान करनेकी बात कहते हों, उनसे तो
प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला।	विशेष सावधान रहना है।
उत्तरमें निवेदन है कि जो लोग आपका गुणगान करते हैं,	समय कलियुगका है। सभी ओर दम्भ छाया है।
आपके अनुकूल ही सब बातें करते हैं, आपकी हाँ-में-हाँ	भेड़की खालमें भेड़िये घुसे हैं, सन्तके नामपर लोभी,
मिलाते हैं, आपको व्यसनोंमें लगाते हैं, आपको इन्द्रिय-	लालची सर्वत्र फैल रहे हैं, साहूकारके नामसे चोरोंका
सुख तथा सांसारिक भोगोंकी प्राप्तिका प्रलोभन देते हैं	बाजार चल रहा है। इस समय विशेष सावधानी रिखये।
अथवा चमत्कार दिखाकर तुरन्त भगवान्को मिला देनेकी	बस, भगवान्का भजन कीजिये, सदाचारका पालन
बात कहते हैं— उनसे सदा सावधान रहना चाहिये।	कोजिये। माता-पिताको सेवा कोजिये। प्रभु-प्रीत्यर्थ

बात कहत ह— उनस सदा सावधान रहना चाहिय। काजिय। माता-ापताका सवा काजिय। प्रभु-प्रात्यथ आपने जो चमत्कारकी बातें लिखी हैं—भगवान्का घरका काम सचाई, ईमानदारी तथा परिश्रमसे कीजिये। प्रत्यक्ष प्रसाद मँगा देना, भगवान्के साक्षात् दर्शन कराना, इसीमें कल्याण है, शेष भगवत्कृपा।

अशून्यशयनव्रत ।

चन्द्रोदय रात्रिमें ७।५६ बजे।

सूर्य रात्रिमें ८।५३ बजे।

मुल रात्रिमें ४।० बजेतक।

गोवत्सद्वादशी, प्रदोषव्रत, धनतेरस।

भद्रा दिनमें १२।१६ बजेसे रात्रिमें १।३ बजेतक।

मिथुनराशि दिनमें २।१२ बजेसे, संकष्टी (करवाचौथ) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत,

भद्रा सायं ४।११ बजेसे रात्रिमें ३।० बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें ११।

अमावस्या, वृश्चिकराशि दिनमें १।३३ बजेसे, अन्नकूट, काशीसे अन्यत्र गोवर्धन-पूजा।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा रात्रिमें १।५१ बजेसे, कुम्भराशि रात्रिमें ३।२ बजे, पंचकारम्भ रात्रिमें ३।२ बजे।

भद्रा दिनमें २।३ बजेतक, गोपाष्टमी, सायन धनुका सुर्य दिनमें २।१८ बजे।

भद्रा सायं ५ । २२ बजेसे रात्रिशेष ६ । १४ बजेतक, प्रबोधिनी एकादशीव्रत

मेषराशि रात्रिमें १०। ४७ बजे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें १०। ४७ बजे,

भद्रा दिनमें १२। ३२ बजेसे रात्रिमें १। २९ बजेतक, वृषराशि

(स्मार्त्त), तुलसीविवाह, मूल रात्रिमें ८। २३ बजेसे।

प्रदोषव्रत, मुल समाप्त रात्रिमें १।२३ बजे।

दिनमें १०। ३५ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा। कार्तिक पूर्णिमा, कार्तिकस्नान समाप्त।

१८ बजेसे, धन्वन्तरि-जयन्ती, नरकचतुर्दशीव्रत, श्रीहनुमज्जयन्ती।

व्रतोत्सव-पर्व

,,

,,

,,

ξ ,,

१३ ,,

१४ ,,

१५ ,,

दिनांक

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक-कृष्णपक्ष तिथि नक्षत्र दिनांक मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

१ नवम्बर वृषराशि रात्रिमें ३।३१ बजेसे।

प्रतिपदा रात्रिमें ९। ३७ बजेतक रिव भरणी रात्रिमें ८।५५ बजेतक द्वितीया " ११।२९ बजेतक कृत्तिका 🗤 ११। १९ बजेतक सोम ,,

मंगल रोहिणी ,, १।२२ बजेतक

तृतीया 🤈 १।३ बजेतक मृगशिरा 🕠 ३। ० बजेतक बुध

चतुर्थी " २।८ बजेतक

पंचमी " २।४६ बजेतक गुरु आर्द्रा रात्रिशेष ४।१० बजेतक

षष्ठी " २।५३ बजेतक शुक्र

पुनर्वसु 🦙 ४।५० बजेतक

🕠 ४।५९ बजेतक सप्तमी " २। २९ बजेतक शनि पष्य

अष्टमी " १ ।३६ बजेतक रवि आश्लेषा ,, ४।४२ बजेतक

सोम मघा रात्रिमें ४।० बजेतक

9 ,, 6 11 9 ,,

१० 11

मंगल पु०फा० ,, २।५७ बजेतक

नवमी "१२।१८ बजेतक बुध उ०फा० 🕠 १।३० बजेतक ११ ,,

दशमी 😗 १०।४० बजेतक हस्त 🥠 १२।६ बजेतक १२ ,, गुरु

एकादशी '' ८।४१ बजेतक द्वादशी 🗥 ६ ।३० बजेतक त्रयोदशी सांय ४।११ बजेतक चित्रा ,, १०।२८ बजेतक शुक्र

चतुर्दशी दिनमें १ । ४९ बजेतक | शनि | स्वाती 🕠 ८ । ४७ बजेतक

अमावस्या 🕠 ११। २७ बजेतक विशाखा ,, ७।९ बजेतक रवि

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, कार्तिक-शुक्लपक्ष

तिथि वार नक्षत्र प्रतिपदा दिनमें ९।१२ बजेतक सोम अनुराधा सायं ५ । ४० बजेतक

१६ नवम्बर **काशीमें गोवर्धनपूजा, भैयादूज, यमद्वितीया, मूल** सायं ५ । ४० बजेसे, मंगल ज्येष्ठा 🕠 ४। २२ बजेतक मूल दिनमें ३।२२ बजेतक बुध

द्वितीयाप्रात:७।६ बजेतक चतुर्थी रात्रिमें ३।४५ बजेतक

पु०षा० ,, २।४१ बजेतक गुरु शुक्र उ०षा० 🗤 २ । २६ बजेतक

पंचमी 🕠 २।४० बजेतक शनि श्रवण ,, २।३९ बजेतक

षष्ठी 🕠 २।१ बजेतक सप्तमी 🗤 १ ।५१ बजेतक अष्टमी 🔑 २ । १४ बजेतक रवि धनिष्ठा 🗤 ३। २२ बजेतक

सोम मंगल

नवमी <table-cell-rows> ३।८ बजेतक

शुक्र

शनि

रवि

सोम |

द्वादशी अहोरात्र

द्वादशी प्रात: ८ ।१५ बजेतक

त्रयोदशी दिनमें १०।२६ बजेतक

चतुर्दशी 🕠 १२।३२ बजेतक

पूर्णिमा 🕠 २ । २६ बजेतक

शतभिषा सायं ४।३६ बजेतक पु०भा० रात्रिमें ६।१७ बजेतक

दशमी <table-cell-rows> ४।२८ बजेतक

एकादशी रात्रिशेष ६। १४ बजेतक

बुध

उ० भा० ,, ८। २३ बजेतक

गुरु

२४ २५ रेवती 🗤 १०। ४७ बजेतक २६ ,,

अश्वनी ,, १।२३ बजेतक

भरणी ,, ३।५९ बजेतक

रोहिणी अहोरात्र

कृत्तिका ,, ६। २५ बजेतक

२१ २२ २३

१९ २० ,,

२७

२८

२९

30 "

१७ ,, १८

वृश्चिक-संक्रान्ति रात्रिमें ६।४६ बजे, हेमन्त-ऋतु प्रारम्भ। धनुराशि सायं ४। २२ बजेसे। मूल दिनमें ३।२२ बजेतक, भद्रा सायं ४।३१ बजेसे रात्रिमें ३।४५

दीपावली।

बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**

मकरराशि रात्रिमें ८।३७ बजेसे, अनुराधाका सूर्य रात्रिमें १।४८ बजे। सूर्यषष्ठीव्रत।

अक्षयनवमी।

मीनराशि दिनमें ११।५१ बजेसे।

एकादशीव्रत(वैष्णव)।

श्रीवैकुण्ठचतुर्दशीव्रत।

भद्रा दिनमें २।४१ बजेतक, मूल रात्रिशेष ४।५९ बजेसे। सिंहराशि रात्रिशेष ४।४२ बजेसे, अहोईव्रत। भद्रा दिनमें ११।२९ बजेसे रात्रिमें १०।४० बजेतक।

भद्रा रात्रिमें २।५३ बजेसे , कर्कराशि रात्रिमें १०।४० बजेसे, विशाखाका

रम्भा एकादशीव्रत (सबका), कन्याराशि दिनमें ८। ३६ बजेसे।

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना संख्या १०] श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना (इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७६ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७७ तक रही है) ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्। अवन्तिकानगर, असवार, असोहा, अहमदाबाद, आऊवा, स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥ आगरा, आगरमालवा, आग्राम, आडंद, आनन्दनगर, 'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय आबूरोड, आमगाँवबडा, आमळा, आला [नेपाल], ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका आवसर, आष्टा, इंदिरानगर, इंदा, इंदौली, इंदौर, इंद्राना, नाम-स्मरण करते और दुसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।' इचलकरंजी, इजोत, इतवारी खुर्द, इन्दरवास, इलाहाबाद, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। इसौली, उख्रुल, उज्जैन, उदयगीर, उदयपुर, उदरामसर, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ उधरनपुर, उमरिया, उरतुम, उलपुरा, उल्हासनगर, —इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप उसनाडकला, उस्मानाबाद, ऊदपुर, उसरी, ऋषिकेश, पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है— ओडा, ओराडसकरी, ओबरा, कघारा, कटक, कटरा (क) मन्त्र-संख्या ७२,९४,९५,४०० (बहत्तर बाजार, कठुआ, कड़ीला, कदन्ना, कथैया, कनैड, करोड़, चौरानबे लाख, पञ्चानबे हजार, चार सौ)। करडावद, करनभाऊ, करनाल, करही (शुक्ल), करीमगंज, (ख) नाम-संख्या ११,६७,१९,२६,४०० (ग्यारह करैया जागीर, करौदी, कर्मचारीनगर, कल्याण, कल्याणपुर, अरब, सड़सठ करोड़, उन्नीस लाख, छब्बीस हजार, कवलपुरामठिया, कसारीडीह, काँकरोली, काँगड़ा, कॉंगोक्पी, कॉंचीगुडा, काकलचक, काकिंदा, काठमांडो, चार सौ)। (ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य कानपुर, कानड़ी, कान्दीवली, कामठी, कामता, कालका, मन्त्रोंका भी जप हुआ है। कालाडेरा, कालियागंज, कालूखाँड़, कासिमबाजार, (घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-किरारी, किसमिरिया, किस्मीदेसर, कीसियापुर, कुक्षी, अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने कुचामनसिटी, कुरमापाली, कुर्मीचक, कुरुक्षेत्र, कुरुसेंडी, कुर्ला, कूड़ाघाट, केंकरा, कैथल, कोईलारी, कोटरा, उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। कोटद्वार, कोटा, कोषदा, कोठी, कोइलहिया, कोथराखुर्द, भारतके अतिरिक्त बाहर कनाडा, फ्रामिंघम, मलेसिया, कोरापुट, कोलकाता, कोलार, कोलिया, कोलीढेक, मेलबोर्न, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड कोहका, केन्दुझर, कैथापकड़ी, कौहाकुड़ा, कौलेती किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ (नेपाल), कौवाताल, खंजरपुर, खगडिया, खजरेट, खजुरीरुण्डा, खजूरी, खड्गपुर, खडगवा, खडगवाँकला, प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंजन्, अंता, अंधेरी, अंबाला, अंबेडकर चौक, अकबरपुर, अकोला, अचरोल, अचानामुरली, अचारपुरा,

अजमेर, अजीतगढ़ अमरसर, अड्सीसर अडावद, अनगाँव, अनघौरा, अबोहर, अमरकंटक, अमरवाडा, अमरावती, अमरावतीघाट, अमृतपुर, अमृतसर, अरनिया-

जोशी, अरनेठा, अलवर, अलवाई, अलीगंज, अलीपुरकला,

खुरपावड़ा, खेड़ारसूलपुर, खेतराजपुर,

खरखो, खाजूवाला, खातीबाग, खानिकत्ता, खालिकगढ़, खिरिकया, खिलचीपुर, खुटपला, खुनखुना, खुरपा,

गंगापुर सिटी, गंगाशहर, गंजवसौदा, गड़कोट, गढ़पुरा,

खेलदेशपाण्डेय, खैराचातर, खैराबाद, गंगातीकलाँ,

गढ़वसई, गढेरी, गणेती, गनेड़ी, गाँधीनगर, गाजियाबाद, गुंडरदेही, गुड़गाँव, गुड़रू, गुड़ाकला, गुढ़ा, गुना,

भाग ९४ कल्याण गुरुग्राम, गुलाबपुरा, गुलेरगुडु, गोकुलनगर, गोकुलेश्वर, धामणगाँव, धाली, धौलपुर, ध्रांगघा, नगरगाँव, गोठड़ा, गोपालगंज, गोपालगढ़, गोपीनाथ अड्डा, नन्हवाराकला, नयापारा (खुर्द), नयाबाजार, नयीदिल्ली, गोपेश्वर, गोरखपुर, गोलागोकरननाथ, गौडीहार, ग्वालियर, नरोही, नलवार, नांदन, नाऊडाँड, नाकोट, नागल, घगोंट, घघरा, घटपुरा, घटोद, घराकड़ा, घरैहली, नागपुर, नागौर, नाचनी, नाढी, नादकंडा, नाथूखेड़ी, घाटवा, घाटासेर, घिंचलाय, घिनोट, घिनौर, घुघली, नानगाँव, नाभा, नारायणपुरा, नासिक, नाहली, निगोही, घेवड़ा, घोंच, चंडीगढ़, चन्द्रपुर, चंदला, चंदौली, नीमकाथाना, नीमच, नेवादा, नेवारी, नैनवारा, नैवेद, चंपाघाट, चकदही, चक्कीरामपुर, चपकीबघार, चम्बा, नैनीताल, नोखा, नोनियाकरवल, नोनीहाट, नोनैती, चरघरा, चाँडेल, चाँदखेडा, चाण्डक्यपुरी, चारहजारे, नौगाँव, पंचकूला, पंतगाँव, पंडतेहड़, पंडेर, पंडेश्वर, चिखलाकला, चिचोली, चित्तौड्गढ्, चित्रकूट, चिराना, पंचपेडा, पटना, पटनासिटी, पटाडिया, पट्टी, पटियाला, पत्योरा, पद्मपुर, परतुर, परबतसर, परोक, परोख,

चिलौली, चीचली, चुड़ाचाँदपुर, चुरू, चेंगलपट्टू, चेन्नई, चेबड़ी-धगोगी, चैसा, चोपड़ा, चारबड़, चौकाबाग, पलेई, पाँडेयढौर, पाटई, पाटमऊ, पाली, पाहल, चौखा, चौखुटिया, चौमहला, चौरास, चौहटन, छकना, पिंडरई, पिजड़ा, पिछोर, पिठौरागढ़, पिथौरा, पिम्परी, छपरा, छाजाका नागल, छापर, छालामुरा, छोटालम्बा, पिलखुवा, पीठीपट्टी, पीलवा, पुणे, पुनासा, पुपरी, जंघोरा, जगदीशपुरा, जगाधरी, जट्टारी, जनापुर, जबलपुर, जमरोहीकला, जमानी, जमुड़ी, जम्मू, जयपुर,

जयप्रभानगर, जरुड, जलगाँव, जलोदाखाटयान जसवंतढ, जसो, जॉजगीर, जाजली, जानडोल, जामनगर, जामपाली, जिहुली, जींद, जी०टी० बी० नगर, जीरा, जूनीहातौद, जैतारन, जैतो, जैपुर, जैसलमेर, जोधपुर, जोबनेर, जोस्युडा, जौलजीवी, झहुराटभका, झाँसी, झालीवाडा,

झुन्झुनू, झुलाघाट, टंगला, टटेडा, टबेरी, टिकरीखिलडा, टीकमगढ, टीलाघाम, टेघरा, टोंकखुर्द, डोम्बीवली, टोरडा, टोडारायसिंह, टोसम, ठकुरापार, ठाणे, ठाणी, डकोर, डडमाल, डडि्हथ, डबरा, डबोक, डीग, डीडवाना, ड्रॅंगरगढ़, डोंगरिया, डोंविवली, ढॉंगू, ढोलवना, बिजनौर, बिदराली, बिरहाकन्हई, बिलासपुर, बिलोदी, तरकडा, तर्भा, तलवार, तामली, तुगाँव, तिसपरी, बीकानेर, बीना, बीड़काखेड़ा, बीदार, बीसलपुर, बुटियाना, तिमसिन, तिमिरिया तुलाह,तेलगांना, तेल्हारा, तोक्या, बुरहानपुर, बुलन्दशहर, बुल्ढाणा, बूँदी, बूँदीका गोड़ा,

टोपचाँची, तोला, तोरीबारी, तोशम, त्रिमूर्तिनगर, थाणे, थाना, थुलवासा, दडीबा, दत्यारसुनी, दमोह, दरौना, दलसिंहसराय, दहमी, दातारामगढ़, दादावाणी, दादैरा (जुरहरा), देणोक, दामनजोडी, दामोदरपुर, दारानगरगंज, दिल्ली, दुआरी, दुमका, दुमदुम, दुर्ग, दुर्गानगर, देवगलपुर, पुरुणावान्ध्रगोडा, पुरेना, पूरबसराय, पूर्णियाँ, पोखरनी, पोरबन्दर, पौड़ीकला, पौना, फतेहपुर, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फागी, फिरवॉंसी, फूलपुररामा, फूलवारी, बंगललूरु, बंगलीर, बंबई, बगदड़िया, बगदा, बगुरैया, बघेरा, बछादा, बटाला, बड़गाँव, बड़ालू, बदरवास, बनेड़िया, बनैल, बमेनियाकला, बमोरा, बरड़ा, बरवाला, बरेली, बरोरी, बरोहा, बलरामपुर, बलिगाँव, बसाँव, बसई, बहेरी, , बागपत, बाँगरोद, बाँदनवाड़ा, बाँसवाड़ा, बाँसउरकुली, बादपारी, बामनखेडा, बाम्बे, बारा, बारावल, बारीकेल, बलांगीर, बालूमाजरा, बाराकोट (नेपाल) बासोपट्टी, बिगरिहया, बिटोरा (नेपाल),

बेलसोन्डा, बेलासद्दी, बेलोना, बैतूल, बैंतूलगंज, बैरसिया, बोंमेकल, बोकारो, बोरनार, बोराडा, बोरीवली, बौली, ब्यावर, ब्यौही, ब्रह्मनवाडा, भटिण्डा, भट्टू (बैजनाथ), भडको, भईन्दर, भटगाँव, भरतपुर, भरसी, भलकी, देवमयीपुरवा, देवरी, देवास, देशनोक, देहरादुन, दौसा, भलस्वाईसापुर, भवराणा, भवानीपुर, भस्मा, भागलपुर, glttingthis, nar Diecouch Recombin, hatting the darfination of harmon, lather than the control of the control

बेगूँ, बेगूसराय, बेनीगंज, बेरली खुर्द, बेलडा, बेनियाकावास,

संख्या १०] श्रीभगवन्नाम-जप	की शुभ सूचना ४३
<u> </u>	*****************************
भिलाई, भिनाय, भिरावटी, भिवण्डी, भीकमगाँव,	वजीरगंज, वड़गाँव, वड़ोदरी, वरकतनगर, वल्लभगढ़,
भीनासर, भीमदासपुर, भीलवाड़ा, भुवनेश्वर, भुसावल,	वल्लभनगर, वसंत, वसाँव, वसई, वाकासर बुडिकयां,
भून्तर, भूराचौक, भूरेवाल, भेडवन, भेमई, भैंसड़ा,	वागोसड़ा, वानासद्दी, वापी, वामोदा, वाराकला, वाराकोटा,
भैसबोड, भैसलाना, भोकरदन, भोगपुर, भोड़वालमाजरी,	वाराणसी, विजयनगर, विदिशा, विद्याधरनगर, विराटनगर,
भोपाल, भोपालपुरा, भ्रमरपुर, मंगलूर, मंडी, मंडीडबवाली,	विलखा, विलसन्डा, विवेकानन्दनगर, विशाखापट्टनम,
मंडलेश्वर, मऊगंज, मकेंग, मगतादीस, मझेवला, मणू,	विशाड़, विशुनपुरवा, विस्टान, वीदासर, वीदर, वीरभद्र,
मथुरा, मडलेश्वर, मदाना, मनकापुर, मनसुली, मन्योह,	वीरसागर वीराड, वेरावल, वैकुंठपुर, वैशालीनगर,
मयानागुड़ी, मलँगवा (नेपाल), मलाँड, मलेनपुरवा,	वोरावली, व्यावर, शमीरपुर, शाजापुर, शास्त्रीनगर,
मलोट, मस्सूरा, महराजगंज, महरौनी, महका, महल,	शाहगंज, शाहतलाई, शाहपुर, शिमला, शिवपुर, शिवली,
महाजन, महादेवा, महासमुन्द, महेन्द्रगढ़, महेशानी,	शिवसागर, शेखावाटी, शेगाँव, श्यामला हिल्स, श्रीकृष्णनगर,
महेश्वर, मांडल, माचलपुर, माजिरकाडा, माडलगढ़,	श्रीगंगानगर, श्रीडूँगरगढ़, संगावली, संघर, संदणा,
माधोपुर, मानगो, मानसरोवर, मालेगाँव, मावली,	सकरी, सतना, सनावद, सपलेड, सपिया, सफीपुर,
मिश्रपुर, मिर्जापुर, मीतली, मीरारोड, मीलवाँ, मुंगेर,	सरथुआ, सरदमपिंडारा, सरदार शहर, सरयाँज, सरसौंदा,
मुंगेली, मुंबई, मुकुली, मुजफ्फरपुर, मुरदाकिया, मुरादाबाद,	सलापड, सवाई माधोपुर, ससना, सहता, सांगली,
मुलड, मुस्तफाबाद, मूडिया, मूडी, मेंड़ई, मेंहदीपुर	सागर, सादाबाद, सादुलपुर, सालान-बी., सारेयाद,
बालाजी, मेघौना, मेड़तारोड, मेरठ, मेवड़ा, मैगलगंज,	साहवा, साहू, सिंगापुर, सिंगहायुसुभपुर, सिकन्दराराऊ,
मैनपुरी, मोगा, मोरीजा, मोहननगर दुर्ग, मोहनपुरा,	सिकहुला, सिडको, सिमराटाँड, सिरपुर कागजनगर,
मोहबा, मोहाली, मौजपुर, यमुनानगर, यवतमाल,	सिरसा, सिरहौल, सिरेसादगाँव, सिरोही, सिलीगुड़ी,
येवला, रंगिया, रठेरा, रणग्राम, रतनगढ़, रतनपुर,	सिवनी मालवा, सिवानी, सीकर, सीनखेड़ा, सीमातल्ला,
रतनमहका, रतलाम, रत्नाकरपुर, रन्नौद, रसूलपुर,	सुन्दरवाला, सुखलिया, सुगवा, सुजानगढ़, सुजानदेसर,
रहली, राजकोट, राजगढ़, राजनगर, राजरूपपुर,	सुधारबाजार, सुरखी, सुरला, सुल्तानपुर, सुरहन, सूरतगढ़,
राजवंशनगर, राजाका सहसपुर, राजाआहर, रातिया,	सूरतपुर, सूरत, सेमरामेडौल, सेमराहाट, सेंठा, सेरो,
राधादामोदरपुर, रानीकटरा, रामगढ़, रामद्वारा, रामपुर,	सैंथरा, सोजतरोड, सोनीपत, सोरखी, हटवा, हटिबेरिया,
रामनगर, रामेश्वरकम्पा, रायगढ़, रायपुर, रायपुररानी,	हतीसा, हनुमानगढ़, हमीरपुर, हराबाग, हरिद्वार,
रायपुरिशवाला, रायबरेली, रायला, रींगस, रुड़की,	हरियाना, हल्द्वानी, हाँसोल, हाँसी, हल्दौर, हल्लीखेड़ा,
रुद्रपुर, रेवडापुर, रैहन, रोहतक, रोहनी, लक्ष्मणगढ़,	हसनपालीया, हसनपुर, हसलपुर, हाड़ौती, हातिखुआ,
लक्ष्मीपुरा, लखनऊ, लखना, लखीमपुर खीरी, लखीबाग,	हातोद, हाथीदेह, हाबड़ा, हिंगोली, हिमायतनगर,
लटेरी, लमतड़ा, लरछुट, लामिया, लालपुर, लारौन,	हिरणमगरी, हिरनौदा, हिर्री, हिसार, हिगोलाकला,
लावन, लासूर, लाहरखेड़ा, सेहान, लिलुआ, लुधियाना,	हुमरस, हुबली, हुमायूँपुर, हुरमतगंज, हैदराबाद, होडल,
लोधीपारा, लोसिंहा, लोहासिंहा, लोहारा, वगटेढी,	होशंगाबाद, होशियारपुर।
नाम कामतरु काल कराला	। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता।	। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू	। राम नाम अवलंबन एकू ॥

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी

जीवनके परम ध्येय—भगवानुकी प्राप्तिके लिये सबको

पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष

थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं;

उनके अनुसार बहत्तर करोड़, चौरनबे लाख, पञ्चानबे हजार,

चार सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं। पिछले वर्षकी अपेक्षा इस

वर्ष श्रीभगवन्नाम-जप एवं जापकोंकी संख्यामें थोड़ी

वृद्धि हुई है। भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि

जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-

जपकी संख्यामें और वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक

किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव

नहीं है। अत: जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल

पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये,

भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-

जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे

आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं०

२०७८)-तक पुरा किया जाय। पुरे पाँच महीनेका समय है।

शुद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोडकर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती

है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं

जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है,

आप महानुभावोंसे पुन: इस वर्ष पंचानबे करोड़

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप

भगवानुके प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक,

गत वर्ष पंचानबे करोड नाम-जपकी प्रार्थना की गयी

भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही भगवानुके आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र

हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी

अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके

पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके

(ना॰पूर्व॰ ४१।११५)

परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें

अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न

ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक

तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या

है ? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी

अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है

कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये

श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।'

इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि

'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-

पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं,

जगतुके समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें

भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम

नित्य-सिद्ध अपने बहत-से नाम कृपा करके प्रकट कर

दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-

स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका

स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः। 'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर

नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है-

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने

इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-

कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

संख्या १०] श्रीभगवन्नाम-जपके	लिये विनीत प्रार्थना ४५				
***********************************	**************************************				
अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा	—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें				
करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।	तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें				
(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा	भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक				
(दिनांक ३०। ११। २०२० ई०) सोमवार रखी गयी है। इसके	सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-				
बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी	जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका				
पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७८ दिन-मंगलवार	हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना				
(दिनांक २७।४।२०२१)-को कर देनी चाहिये।इसके आगे	भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता,				
भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।	मोबाइल नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।				
(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके	(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर				
नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।	भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका				
(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-	संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप				
से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये,	आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल				
अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।	जपकी संख्या उल्लिखित हो।				
(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे	(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता				
अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा	दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या				
सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।	अवश्य लिखनी चाहिये।				
(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय	(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने–भिजवानेमें				
आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके	इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या				
समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते	प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे,				
हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया	ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक				
जा सकता है।	होकर प्रभावक बनते हैं।				
(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो	(११) जापक महानुभावोंको प्रतिवर्ष श्रीभगवन्नाम-				
सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा	जपकी सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।				
लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक	(१२) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी,				
जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।	गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।				
(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं;	सूचना भेजनेका पता—				
उदाहरणके रूपमें—	नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग,				
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।	गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)				
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥	प्रार्थी—				
	राधेश्याम खेमका				
	♦•• सम्पादक—'कल्याण'				
राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे	। किल न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे॥				
राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे	। राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज रे॥ । मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे॥				
	। कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥				
	। राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे॥				
	[विनय-पत्रिका]				
श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता (मोबाइल नम्बरसहित)					
साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम⁄नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। —सम्पादक					

कृपानुभूति लंगूरपर शिवकृपा

वानरस्वभाववश मलिन कर देता था। उसकी इस हरकतको

समय में वन-अधिकारी था; इसलिये मुझे नर्मदा नदीके उद्गम अमरकंटकसे लेकर मध्य प्रदेश तथा गुजरातकी सीमातक फैले तटवर्ती वनोंमें कार्य करनेका अवसर

नर्मदा नदीपर बाँध बँधनेके पूर्वकी बात है, उस

मिला। इस दौरान मुझे नर्मदा नदीके उत्तरी और दक्षिणी दोनों तटोंपर, विशेषकर वन क्षेत्रोंमें स्थित, छोटे-बडे,

महत्त्वपूर्ण और महत्त्व खो चुके धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक स्थानोंके दर्शन और सुक्ष्मतासे अध्ययनका भरपुर अवसर मिला। इसी कडीमें वर्ष १९७५ की एक सत्य घटना इस प्रकार है-

ओंकारेश्वरमें आज जहाँ बाँध है, उससे बहावके ऊपरकी तरफ नर्मदाके किनारे, एक उजाड़ गाँव काजल माता था। वहाँ गाँव या बस्ती थी, इसका एकमात्र प्रमाण नर्मदाके किनारे-स्थित एक पुराना शिवमन्दिर है, जो उस

समय खण्डहर हो चुका था। कभी गाँव रहा वह पुरा क्षेत्र वृक्षों, झाड़ियोंसे घना जंगल बन चुका था। वन विभागके तकनीकी कार्य चलते रहनेके कारण मुझे प्राय: वहाँ जाना पड़ता था। शिवमन्दिरका खण्डहरनुमा प्रांगण ही हमारा

करते, दोपहरका भोजन करते और मीटिंग करते थे। काम करनेवाले श्रमिक आसपासके गाँवोंके होते थे। नर्मदाकी परिक्रमा करनेवाले, नर्मदामें स्नान करनेवाले,

कैम्पस्थल था: जहाँ मैं, मेरा स्टाफ और श्रमिक विश्राम

आसपासके गाँववाले इस शिव-मन्दिरमें पूजाकर प्रसाद, फल आदि चढ़ाते रहते थे। मन्दिरमें कोई पुजारी नहीं होनेसे इस चढ़ौतीको न कोई उठाता था, न खाता था। वैसे भी शंकरजीकी पिण्डीपर चढ़ा प्रसाद चण्डका भाग होनेके

कारण कोई नहीं खाता। एक बार एक लंगूर वहाँसे गुजरा। उसे मन्दिरमें चढ़ा हुआ प्रसाद दिखा। वह डरते-डरते मन्दिरके अन्दर गया

और उसने उस शिवपिण्डीपर चढ़े हुए प्रसादको खाया। फिर तो वह निडर होकर मन्दिरमें आता और शंकरजीकी पिण्डीके ऊपर बैठकर चढ़े हुए प्रसाद, फूल, फलको

मवेशी चरानेवालोंने, वनोंमें काम करनेवालोंने, मन्दिरमें आने-जानेवालोंने भी देखा था। एक बार जब वह लंगुर शंकरजीकी पिण्डीपर बैठकर

प्रसाद खा रहा था, मवेशी चरानेवाले वहीं पासमें छाँहमें बैठकर विश्राम कर रहे थे। तभी एक तेन्द्रआ जंगलसे निकलकर नर्मदामें पानी पीनेको जा रहा था। एकाएक उसकी नजर शंकरजीकी पिण्डीपर बैठकर प्रसाद खाते लंगुरपर

पडी। तेन्दुआ ठिठका, उसने पानी पीनेका विचार छोड दिया और वहीं घात लगाकर, दुबककर बैठ गया और लंगूरकी गतिविधिका अनुमान लगाने लगा, ताकि उसका शिकार कर

चरानेवाले भयाक्रान्त होकर, साँस रोककर नजारा देखने लगे। तेन्दुआ गाँवोंके कच्चे बने मवेशी घरोंमें घुसकर गायोंके बछडे, बिछया, बकरी, बकरेको चोरीसे उठाकर ले जानेका आदी होता है। कुछ ही मिनटोंमें तेन्दुएने भाँप लिया कि लंगूर घिरा हुआ है और कहीं बचकर भाग नहीं

सकता। वह दबे पाँव मन्दिरकी ओर बढा और द्वारके करीब आकर छलाँग लगाकर लंगूरको दबोचनेकी मुद्रामें आ गया। इतनेमें लंगूरकी नजर तेन्दुएपर पड़ी, मौतको सामने देख, घबराहटमें उसने शंकरजीकी पिण्डीको

बचावकी मुद्रामें दोनों हाथोंसे जकड़ लिया। तेन्द्रएने लंगूरको पकड्नेके लिये पूरी ताकतसे, ऊँची छलाँग लगायी। छलाँग लगानेमें तेन्दुएका अनुमान थोड़ा चूक

गया और मन्दिरके दरवाजेकी पत्थरकी चौखटसे बड़ी जोरसे सिरके बल टकराया। इससे वह लहुलूहान होकर दरवाजेपर ही गिर गया और अचेत हो गया। उसका खूनसे सना शरीर तड़प-तड़पकर शान्त हो गया। तेन्दुएकी मौत हो गयी।

महादेव भगवान् शंकरजीकी शरणमें आये लंगूरकी मौत टल

गयी। चरवाहे घबराकर उठे और मददके लिये चिल्लाये।

सके। तेन्द्रए और उसकी शिकारी मुद्राको देख, मवेशी

चरवाहोंके चिल्लानेकी आवाजसे डूबतेको तिनकेका सहारा मिला, लंगूर जंगलमें भाग गया। यह घटना मुझे वहाँके खानानितार समान्ति हो एक निवास में समान्ति हो एक समान्ति हो होते हैं समान्ति हो हो समान्ति हो समान्ति हो समान्ति हो समान्ति होते हैं समान्ति हो समानिति हो समान्ति हो समान

पढो, समझो और करो संख्या १०] पढ़ो, समझो और करो (१) तो मैं बड़े सहमे एवं विनम्रताभरे स्वरमें उससे कहा-अनजान सहयात्रीकी सद्भावना 'कण्डक्टर साहब! मेरे पास पैसे नहीं हैं, मेरा मतलब वर्ष १९९५ की बात है। मैं उन दिनों हिमाचल कि मैं लखनऊसे आ रहा हूँ, परंतु दुर्भाग्यवश मैं चलते प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमलामें एसोसिएट प्रोफेसरके समय पैसा लेना ही भूल गया। मैं शिमला यूनिवर्सिटीमें ही पढ़ाता हूँ। वहाँ पहुँचकर मैं आपको पैसे दे दूँगा।' पदपर था। माता-पितासे मिलने आया हुआ था। वापस लौटनेके लिये मेरे पास अम्बालातकका ट्रेन रिजर्वेशन था कण्डक्टरने मेरी बात सुनी और मेरे कहनेके लहजेसे और अम्बालासे बस पकड़कर मुझे शिमला पहुँचना था। उसने मेरी बातपर विश्वास कर लिया और कहने लगा— वापसीमें एक साहब मुझे लखनऊ स्टेशनतक 'साहब! मुझे तो आपकी बातपर भरोसा है, लेकिन यदि छोड़ गये और मैं अम्बाला जानेवाली ट्रेनमें बैठ गया। रास्तेमें टिकट चेकिंग हो गयी, तब तो मेरी नौकरी जानेकी नौबत आ जायगी और आपको भी उसी पहाड़ी ट्रेन चल पड़ी, तब मुझे याद आया कि मैं लखनऊमें घरसे पैसे लेना तो भूल ही गया था। अब मेरी जेबमें स्थानपर उतार दिया जायगा।' एक भी पैसा नहीं था और अम्बाला पहुँचकर शिमला हमारी ये बातें पीछेवाली सीटपर बैठे एक व्यक्ति सुन रहे थे। अचानक वे सज्जन कण्डक्टरसे बोले—'ओ जानेके लिये बसका टिकट खरीदना था। अगले दिन मेरी भाई! कोई बात नहीं, मैं दे देता हूँ इनका किराया।' यह ट्रेन अम्बाला पहुँची। मेरे पास चाय पीनेके लिये भी पैसे नहीं थे। लखनऊसे चलते समय मेरी माताजीने रास्तेके सुनकर मुझे बड़ा सुकून मिला और मैं उन सज्जनके प्रति लिये थोड़ा-सा खाना बाँध दिया था, तो उससे मेरा आभार व्यक्त करने लगा। फिर मैंने उनसे उनका नाम रास्ता कट गया। भूखे नहीं रहना पड़ा। पूछा तो उन्होंने अपना नाम बतानेसे इनकार कर दिया। अम्बाला पहुँचकर स्टेशनसे सड़कतक अपना वह इस उपकारके बदलेमें कुछ नहीं चाहते थे। सामान जैसे-तैसे ढोकर लाया। मेरे पास सामान कुछ बादमें जब बस शिमला पहुँच गयी तो मेरे सामने ज्यादा ही वजनदार था। अम्बाला स्टेशनसे सडककी एक विकट समस्या यह थी कि पहाडपर चढना था और दूरी कोई आधा किलोमीटर रही होगी। सड़कपर पहुँचा, सामानका वजन भी ज्यादा था। अब कुलीके बगैर जाना तो वहाँसे पंजाब, हरियाणा और हिमाचलप्रदेशकी बसें नामुमिकन-सा था। कुलीको वहाँ खान कहते हैं, वे गुजर रही थीं। शिमला जानेके लिये मैंने हिमाचल पथ लोग घरतक सामान पहुँचाते हैं। अब समस्या यह थी परिवहन निगमकी बसपर बैठनेका निश्चय किया। यह कि मैं कुली तो कर लूँ, लेकिन वहाँ भी घरपर सौ रुपये सोचा कि उसमें शायद कोई मेरे पहचानका मिल जाय, नहीं पड़े थे, बहरहाल मैंने सोचा पहले चला जाय, फिर क्योंकि मैं वहीं रहता हूँ। देखा जायगा और मनमें एक विश्वास भी था कि जब यहाँतक प्रभुने पहुँचा दिया है तो वे अवश्य ही कोई मैंने हिमाचल जानेवाली एक बसको रोका और सामान लेकर बसमें चढ़ने लगा तो बस-कण्डक्टरने व्यवस्था कर देंगे। कुली करके मैं आगे बढ़ा ही था कि सामान चढ़वानेमें मेरी मदद की। फिर बस चलने लगी। कुछ ही दूरी तय करनेपर मुझे एक परिचित मिल गये थोडे ही समयमें कण्डक्टरने टिकट बनवानेके लिये और मैंने उनसे सौ रुपये माँग लिये और कहा कि कल कहा। पहले तो मैंने उसे अनसुना कर दिया, परंतु जब आपको दूँगा। उन्होंने 'कोई बात नहीं' कहते हुए सौ उसने तेज आवाजमें टिकट बनवानेके लिये मुझसे कहा रुपये मुझे दिये और घर पहुँचकर मेरी यात्रा सुखद

भाग ९४ सम्पन्न हो गयी। यद्यपि इस घटनाको आज पच्चीस वर्ष लेकर कारसे बाहर आया। सच कहूँ तो इतना सब देख हो गये, परंतु बसमें बैठे अनजान सहयात्रीके सद्भावनापूर्ण मैं भी अपनेको उस बच्चेके भाग्यसे ईर्ष्या करनेसे नहीं सहयोगको जब याद करता हूँ तो हृदय गद्गद हो उठता रोक सका। इसके पश्चात् नौकरने बच्चेके बाहर आनेके है। —डॉ० सन्तोष कुमार तिवारी लिये गाड़ीका दरवाजा बहुत ध्यानसे खोला। परंतु यह क्या! दरवाजेमेंसे दो वैसाखियाँ बाहर निकलीं, उसके किसको क्या मिला! बाद एक विकलांग छात्रा, जो बड़ी कठिनाईसे वैसाखियोंपर घटना कई वर्ष पुरानी है। मेरी बेटी विद्यालयकी अपना शरीर सँभालकर किसी तरह विद्यालयके फाटकतक बससे विद्यालय आती-जाती थी, कभी-कभी किसी पहुँची, वहाँपर साथ चल रहे नौकरने उसका बस्ता उसे कारणसे बस नहीं आती थी तो ऑटो आदि जो पकडा दिया। वह कैसे उसे उठाकर भीतर जा पायी सार्वजनिक साधन उपलब्ध होते थे, उनसे जाना होता होगी, भगवान् जाने! था। विद्यालय घरसे दूर था, कभी-कभी मैं भी उसके यह दृश्य देखकर मैं अवाक् रह गया। कुछ क्षण साथ चला जाता था। पूर्व मेरे मनमें जो भाव आ रहे थे, वे सब पता नहीं कहाँ चले गये थे। मुझे अपनी सोचपर ग्लानि हो रही थी। ऐसे ही एक बार मैं उसे विद्यालय पहुँचाने गया था। वह फाटकसे अन्दर चली गयी। मैं यूँ ही थोड़ी अपनी उन्नतिके लिये हमें उचित प्रयास अवश्य करने देर विद्यालयके सामने खड़ा था। अनेक अभिभावक चाहिये, किंतु कभी किसीकी समृद्धिसे ईर्ष्या नहीं करनी अपने बच्चोंको छोड़ने आ रहे थे। कोई पैदल, कोई चाहिये। पता नहीं, किसके पास क्या है, क्या नहीं है। साइकिल, स्कूटर या मोटरसाइकिलसे भी अपने बच्चोंको (3) लेकर आ रहे थे। कुछ बच्चोंको उनके घरवाले अपनी सच्चा प्रायश्चित्त मोटर-गाड़ीसे भी ला रहे थे, और बच्चे बड़ी शानसे नर्मदा नदीके किनारेपर बसे रामपुर गाँवमें रामदास अपनी गाडीसे बस्ता लिये उतरकर विद्यालयके फाटकके नामक एक सम्पन्न कृषक अपने दो पुत्रोंके साथ रहता भीतर जा रहे थे। था। उसकी पत्नीका देहान्त कई वर्ष पूर्व हो गया था, परंतु अपने बच्चोंकी परवरिशमें कोई बाधा न आये, मैंने सोचा सबका अपना-अपना भाग्य होता है, कोई पैदल आता है, कोई किसी सार्वजनिक वाहनसे, इसलिये उसने दूसरा विवाह नहीं किया था। उसके दोनों कोई स्कूटर-मोटरसाइकिलसे तो कोई अपनी मोटर-पुत्रोंके स्वभाव एक-दूसरेसे विपरीत थे। उसका बड़ा गाड़ीसे। वैसे किसीसे ईर्घ्या करना मेरे स्वभावमें नहीं है, बेटा लखन गलत प्रवृत्ति रखते हुए धनका बहुत लोभी किंतु फिर भी मोटर-गाडीवाले बच्चोंको देखकर मनमें था, परंतु उसका छोटा पुत्र विवेक बहुत ही उदार, कुछ भाव तो आ ही रहे थे। इसी बीच वहाँ एक बड़ी-प्रसन्नचित्त एवं दूसरोंके कष्टोंके निवारणमें मददगार

काइ स्कूटर-माटरसाइकलस ता काइ अपना माटर-गाड़ीसे। वैसे किसीसे ईर्ष्या करना मेरे स्वभावमें नहीं है, किंतु फिर भी मोटर-गाड़ीवाले बच्चोंको देखकर मनमें कुछ भाव तो आ ही रहे थे। इसी बीच वहाँ एक बड़ी-सी अत्यन्त शानदार मोटर-गाड़ी आयी। सभी लोगोंकी दृष्टि उधर चली गयी। गाड़ी विद्यालयके फाटकके ठीक सामने रुकी। निश्चय ही किसी प्रभावशाली व्यक्तिकी गाड़ी थी। गाड़ी रुकते ही गाड़ीमेंसे एक नौकर या

ड़ाइवरने उतरकर गाडीका दरवाजा खोला। मैं कारमें

प्रसन्नाचत्त एव दूसराक कष्टाक निवारणम मददगार रहता था। वह कुशल तैराक भी था एवं तैराकीके शौकमें काफी समय देता था। वह अपने पिताके कामोंमें बहुत कम रुचि रखता था। वह सीधा, सरल एवं नेकदिल इंसान था, साथ ही उसे अपने बड़े भाईपर गहन

श्रद्धा एवं पूर्ण विश्वास था।

बैठे बच्चेके भाग्यको सोच रहा था, जिसके ये ठाट-बाट रामदासने अपनी वृद्धावस्थाको देखते हुए अपनी थे। फिर बच्चेके उतरनेसे पहले नौकर बच्चेका बस्ता वसीयत बनाकर अपने सहयोगी मित्रके पास रखवा दी

मनन करने योग्य सच्ची निष्ठा

पहले समयकी बात है। सिन्धु देशकी पल्लीनगरीमें

दोनोंके नयनोंका तारा था। 'कितना मनोरम वन है!' सरोवरमें अपने समवयस्क बालगोपालोंके साथ स्नान करते हुए बल्लालने अपने कथनका समर्थन कराना चाहा। वह उन्हें नित्य अपने साथ लेकर पल्लीसे थोडी दूर स्थित वनमें आकर सैर-सपाटा किया करता था। बालकोंने उसकी 'हाँ-में-हाँ' मिलायी। 'चलो, हमलोग भगवान् विघ्नेश्वर श्रीगणेश देवताकी पूजा करें। उनकी कृपासे समस्त संकट मिट जाते हैं।'

बल्लालने सरोवरके किनारे एक छोटे-से पत्थरको श्रीगणेशका श्रीविग्रह मानकर बालकोंको पूजा करनेकी प्रेरणा दी। उसने श्रीगणेश-महिमाके सम्बन्धमें अनेक बातें घरपर सुनी थीं।

कल्याण नामका एक धनी सेठ रहता था। उसकी पत्नीका

नाम इन्द्रमती था। विवाह होनेके बहुत दिनोंके बाद उनके

पुत्र हुआ; उसके जन्मोत्सवमें उन लोगोंने अनेक दान-

पुण्य किये, राग-रंग और आमोद-प्रमोदमें पर्याप्त धन व्यय किया। उसका नाम रखा गया बल्लाल; वह उन

लता-पत्र एकत्रकर बालकोंने एक मण्डप बना लिया; उसमें तथाकथित श्रीगणेश-विग्रहकी स्थापना करके मानसिक पूजा—फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणा आदिसे— आरम्भ की। उनमेंसे कई एक पण्डितोंका स्वॉॅंग बनाकर पुराणों और शास्त्रोंकी चर्चा करने लगे। इस प्रकार श्रीगणेशजीकी उपासनामें उनका मन लग गया। वे दोपहरको भोजन करने घर नहीं आते थे, इसलिये दुबले हो गये। उनके पिताजीने कल्याण सेठसे कहा कि यदि बल्लालका वनमें जाना नहीं रोक दिया जायगा तो हमलोग राजासे शिकायत करके

चिन्तित हो उठा। 'ये तो नकली गणेश हैं, बच्चो! असली गणेशजी तो हृदयमें रहते हैं। कल्याणने हाथके डंडेसे बल्लालको सावधान किया।

'पिताजी, आप जो कुछ भी कह रहे हैं, वह आपकी

आपको पल्लीनगरीसे बाहर निकलवा देंगे। कल्याणका मन

श्रीविग्रहमें है। मैं पूजा नहीं छोड़ सकता। वल्लालका इतना

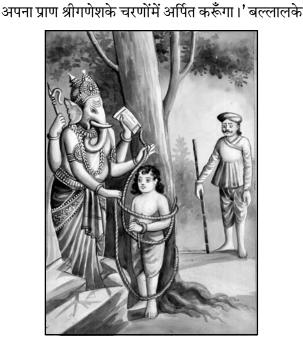
कहना था कि सेठने उसे मारना आरम्भ किया; अन्य बालक भाग निकले। सेठने मण्डप तोड डाला; बल्लालको एक

'यदि इस विग्रहमें श्रीगणेशजी होंगे तो तुम्हारा बन्धन खुल जायगा। इस निर्जन वनमें वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।' कल्याणने घरका रास्ता लिया।

'निस्सन्देह श्रीगणेशजी ही मेरे माता-पिता हैं। वे दयामय ही मेरी रक्षा करेंगे। वे विघ्न-विदारक, सिद्धिदायक. सर्वसमर्थ हैं। मैं उनकी शरणमें अभय हूँ।' बल्लालकी

मोटे-से रस्सेसे पेड़के तनेमें बाँध दिया।

निष्ठा बोल उठी; वह हृदयमें करुणाका वेग समेटकर निर्निमेष दृष्टिसे श्रीगणेशके विग्रहको देखने लगा। 'मेरा तन भले ही बाँधा जाय, पर मेरा मन स्वतन्त्र है; मैं



इस निश्चयसे पाषाणसे श्रीगणेशजी प्रकट हो गये।

आलिंगन किया। वह बन्धनमुक्त हो गया। उसने अपने आराध्यकी जी भरकर स्तुति की। गणेशजीने अभय दान

ਫ਼ਿਲ਼ਿਸ਼ੇਂਰਿਗ਼ਤਜ਼ ਚੁਰਤੈਂਹਾਰ ਦੇ ਉਦ ਸ਼ਿਲ੍ਹੇ ਸ਼ੀਰਿਫ਼ਾ ਹੈ ਕੁੜਾਰੀ ਜ਼ਿਲ੍ਹੇ ਤੁਸੀਂ ਸ਼ਹਿਰ ਸ਼ੀਰਿਫ਼ ਸ਼ਹੂਰ ਸ਼ਹੂਰ

'तुम्हारी निष्ठा धन्य है, वत्स!' श्रीगणेशने उसका

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—देवोपासनाके महत्त्वपूर्ण प्रकाशन								
कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
	भगवान् श्रीगणपति -		819	श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्		1748	संतानगोपालस्तोत्र	6
657	श्रीगणेश-अङ्क	१८०		(शांकरभाष्य)	४०		भगवान् श्रीराम	
2024	श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर	४०	1801	,, (हिन्दी-अनुवादसहित)	१०	1095	श्रीरामचरितमानस -सटीक	<u> </u>
	भगवान् शिव		225	गजेन्द्रमोक्ष	४		ग्रन्थाकार, विशिष्ट संस्करण	350
2223	श्रीशिवमहापुराण-		229	श्रीनारायणकवच	४	574	योगवासिष्ठ	१८०
2224	सटीक दो खण्डोंमें सेट	६५०	1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	१५	103	मानस-रहस्य- सजिल्द	90
1468	सं० शिवपुराण (विशिष्ट सं०)	३००		भगवान् श्रीकृष्ण —		231		8
789	सं० शिवपुराण	२५०	1951	भागवतमहापुराण-			श्रीहनुमान्जी —	
1985	लिंगमहापुराण -सटीक	२५०	1952	्रसटीक, बेड़िआ		42	हनुमान-अङ्क-	
2020	शिवमहापुराणमूलमात्रम्	२७५		(दो खण्डोंमें सेट)	९००		परिशिष्टसहित	१५०
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	४०	571	श्रीकृष्णलीला-चिन्तन	२००		भक्तराज हनुमान्	१०
1627	रुद्राष्ट्राध्यायी (सानुवाद)	३५	517	गर्ग-संहिता	१६५	112	हनुमान-बाहुक	4
1954	शिव-स्मरण	१०	49	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	१००	1907	महाशक्ति भगवती)श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण-	
563	शिवमहिम्न:स्तोत्र	ષ	50	पद-रत्नाकर	११०		आनद्द्रामागवतम्हापुराण= सटीक दो खण्डोंमें सेट	400
228	शिवचालीसा		1927	जीवन-संजीवनी	४५		सं० देवीभागवत	300
	(लघु आकारमें भी)	ધ	555	श्रीकृष्णमाधुरी	४०	41		200
230	अमोघ शिवकवच	४	62	श्रीकृष्णबालमाधुरी	३५	1774		४५
	भगवान् विष्णु		547	विरह-पदावली	३०	2003		२०
48	33 ` ′	१७०	864	अनुराग-पदावली	४०		भगवान् सूर्य —	
1364	श्रीविष्णुपुराण		1862			791	सूर्याङ्क	१५०
	(केवल हिन्दी)	१२०		(हिन्दी-अनुवाद)	१७	211	आदित्यहृदयस्तोत्र	ષ
	गीत	ाप्रेस	, गो	रखपुरसे प्रकाशित	त गो	-सार्	हत्य	

[२२ नवम्बर (दिन—रविवार) को गोपाष्टमीव्रत है।]

गो-अङ्क (कोड 1773)—इस विशेषाङ्कमें सुप्रसिद्ध संत-महात्माओं एवं विद्वानोंके द्वारा प्रस्तुत गायकी महत्ता एवं उपयोगितापर उत्कृष्ट लेखोंके साथ-साथ गायके आर्थिक, वैज्ञानिक एवं धार्मिक महत्त्व तथा गोपालन एवं संरक्षणकी विधियोंका सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। मूल्य ₹२००

गोसेवा-अङ्क (कोड 653)—इस विशेषाङ्कमें गौसे सम्बन्धित अनेक आध्यात्मिक और तात्त्विक निबन्धोंके साथ गौका विश्वरूप, गोसेवाका स्वरूप, गोपालन एवं गोसंवर्धनकी मुख्य विधाएँ तथा गोदान आदि उपयोगी विषयोंका संग्रह हुआ है। मूल्य ₹१३०

गोसेवाके चमत्कार (कोड 651)—गायोंकी महिमा अपार है। प्राचीनसे लेकर अर्वाचीन साहित्यतक गो-महिमासे भरे पड़े हैं। मूल्य ₹२० (कोड 365) तमिलमें भी उपलब्ध।

किसान और गाय (कोड 821)—िकसानोंके लिये व्यावहारिक शिक्षा और गोपालनकी महत्ताका एक सुन्दर विवेचन। मूल्य ₹५ (कोड 1547) तेलुगुमें भी उपलब्ध।

गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (कोड 1922)—प्रस्तुत पुस्तकमें गोरक्षा एवं गोसंवर्धनके शास्त्रीय आलोकमें विलक्षण व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹१०



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

	गीताप्रेससे प्र	काशित	बाल	ा–सा	हित्य पढ़ें और पढ़ावें	
कोड	पुस्तक-	-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
	बालकोपयोगी पुस्तकें र	ंगीन चित्रोंके सा	थ -	1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ पुस्तकाकार	१५
169	0 बालकके गुण	ग्रन्थाकार	४०	1448	वीर बालिकाएँ "	१५
168	9 आओ बच्चों तुम्हें बतायें	,,	30		सचित्र ग्रन्थाकार कहानियाँ	
169	2 बालककी दिनचर्या	,,	२५	2079	शिक्षाप्रद चरितावली	२५
169		,,	२५	2080	शिक्षाप्रद बाल-कहानियाँ	30
				2081	कल्याणकारी बाल-कहानियाँ	३०
169		**	३०	2067	आदर्श बाल-कहानियाँ	३०
169	1 बालकोंकी बातें	पुस्तकाकार	२५	2071	प्रेरक बाल-कहानियाँ	30
143	7 वीर बालक	"	२०	2070	बालकोपयोगी कहानियाँ	३०
145	1 गुरु और माता-पिताके भर	त्त बालक <i>''</i>	१५	2072	प्राचीन बाल-कहानियाँ	B O
145	 सच्चे और ईमानदार बालव 	, "	१५	2068	आदर्श बाल कथाएँ	३०
	वा	लपोथीके ।	सभी	संस्व	तरण उपलब्ध	

हिन्दी-अंग्रेजी वर्णमाला

हिन्दी-अंग्रेजी वर्णमाला, रंगीन (कोड 1992) ग्रन्थाकार— प्रस्तुत पुस्तकमें हिन्दी-अंग्रेजी वर्ण-माला एवं प्रत्येक वर्णमालासे सम्बन्धित रंगीन चित्र दिये गये हैं। मूल्य ₹३०, (कोड 2208) गुजरातीमें भी।

<u> </u>		
कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹
125	हिन्दी - बालपोथी (शिशुपाठ) रंगीन (भाग-१)	9
212	हिन्दी-बालपोथी (भाग-२)	ξ
684	हिन्दी-बालपोथी (भाग-३)	ε
764	हिन्दी - बालपोथी (भाग-४)	१५
765	हिन्दी - बालपोथी (भाग-५)	१५

गीताप्रेससे प्रकाशित—करपात्रीजी महाराजकी पुस्तकें

भिक्तमुधा (कोड 1982)—इसके प्रथम भागमें श्रीकृष्णजन्म, बाललीला, वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला आदिका विशद विवेचन है। द्वितीय भागमें देवोपासना तत्त्व, गायत्री-तत्त्व, शिक्तका स्वरूप, शिक्तपीठ-रहस्य, रामजन्म-रहस्य आदिका तात्त्विक विवेचन है। इसके तृतीय भागमें भगवत्प्राप्ति, नामरूपकी उपयोगिता, मानसी आराधना, भगवत्कथामृत आदि विविध विषयोंपर मार्मिक विवेचन है एवं चतुर्थ भागमें वेदान्तरससार एवं सर्वसिद्धान्त-समन्वय है। मूल्य ₹२०० मार्क्सवाद और रामराज्य—सजिल्द, (कोड 698) पुस्तकाकार—इसमें स्वामीजीने पाश्चात्त्य दार्शनिकों, राजनीतिज्ञोंको जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, भारतीय ऋषियोंसे उनको तुलना, विकासवादका खण्डन, ईश्वरवादका मण्डन, मार्क्सवादका प्रबल शास्त्रीय आलोकमें विरोध तथा न्याय और वेदान्तके सिद्धान्तका विस्तारसे प्रतिपादन किया है। यह राजनीति और दर्शनके विश्वकोशके रूपमें आदरणीय और मननीय ग्रन्थ है। मृल्य ₹१८०

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें। gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005 book.gitapress.org gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।